ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

पवमान

(मासिक)

वर्ष : 34 मार्गशीर्ष-पौष वि0स0 2079 अंक : 12 दिसम्बर 2022

मुद्रकः सरस्वती प्रेस, देहरादून वजनः 50 ग्राम

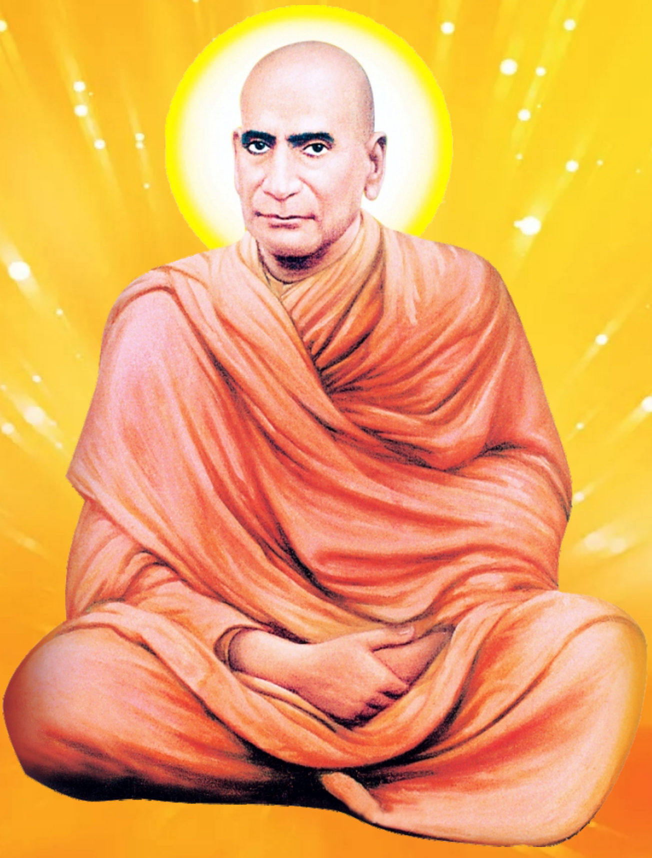

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

karix
connect • interact

Transforming the way businesses communicate & interact with their customers

Karix empowers organisations to enable smarter, relevant, and personalised conversations with their customers and create seamless customer experiences, across the globe. Purpose-built for enterprises, Karix offers a rich suite of communication channels with superior security standards, unmatched customer support and a reliable cloud-based platform to support all communication needs.

21+
years of industry experience with a stronghold in all major industries

2,000+
Enterprise customers

100+ BN
Omni-channel messages processed annually

24x7
Support provided by over 200 engineers

10,000+
Business processes supported

CUSTOMER ENGAGEMENT SOLUTIONS SUITE

- WhatsApp
- A2P Messaging
- Email
- RCS
- Voice
- Marketing Automation
- Campaign Automation
- Chatbots
- Live Agent Chat

WHY DO FORTUNE 1000 BUSINESSES PREFER KARIX?

- Best in class connectivity
- High available systems
- Hybrid cloud infrastructure
- Deep domain understanding

For more details, visit us at www.karix.com or write to us at marketing@karix.com

ओ३म्
पवमान

वर्ष—34 अंक—12

मार्गशीर्ष—पौष विक्रमी 2079 दिसम्बर 2022

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,123 दयानन्दाब्द : 198

★

—: संरक्षक :—

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

मो. : 9410102568

★

—: अध्यक्ष :—

श्री विजय कुमार

मो. : 9837444469

★

—: सचिव :—

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

—: आद्य सम्पादक :—

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

—: मुख्य सम्पादक :—

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

—: सहायक सम्पादक :—

अवैतनिक

मनमोहन कुमार आर्य—

मो. : 9412985121

★

—: कार्यालय :—

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून—248008

दूरभाष : 0135—2787001

मोबाईल : 7895978734 (श्री चन्दन सिंह)

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	डॉ. कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	आचार्य डॉ. रामनाथ वेदालंकार	3
स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल	डॉ. कृष्णकांत वैदिक शास्त्री	4
स्वामी श्रद्धानन्द जी का आर्यसमाज के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान	मनमोहन कुमार आर्य	7
आर्यसमाज के आज के गौरव		11
वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा में गुरुकुलों	मनमोहन कुमार आर्य	12
आत्मोत्थान का मार्ग	प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार	15
मोटापा एवं अतिकृशता	आचार्य बालकृष्ण	17
आरोग्य—चिन्तन—प्रेरक—निर्देश	राधाकृष्णजी सहारिया	20
अधर्म जनपद के विनाश का हेतु	स्वामी वेदानन्द सरस्वती जी	21
आनन्द	महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज	23
महर्षि दयानन्द से वार्तालाप	डॉ. रघुवीर वेदालंकार	25
मूर्ति पूजा पर ऋषि दयानन्द		28

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

दान हेतु बैंक खाते का नाम	बैंक का नाम व पता	बैंक अकाउन्ट नं.	IFSC Code
आश्रम को दान देने के लिये			
1. "वैदिक साधन आश्रम"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101001530	CNRB0002162
पवमान पत्रिका शुल्क			
2. "पवमान"	केनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101021169	CNRB0002162
तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये			
3. 'तपोवन विद्या निकेतन"	यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून	602402010003171	UBIN0560243

पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स

1. कलर्ड फुल पेज — रु. 5000/— प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज — रु. 2000/— प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज — रु. 1000/— प्रति माह

सदस्यों के लिए पवमान पत्रिका के रेट्स

1. वार्षिक मूल्य — रु. 200/— वार्षिक
2. 15 वर्ष (आजीवन) के लिए मूल्य — रु. 2000/—

नोटः पवमान पत्रिका फुटकर विक्रय के लिए उपलब्ध नहीं है।

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

स्वामी श्रद्धानन्द और पुरुषार्थ

जिन कार्यों को करने से हमारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं वे पुरुषार्थ कहलाते हैं। वेदादि शास्त्रों में मनुष्य के करने योग्य चार पुरुषार्थ बताए गए हैं:- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मपूर्वक धन प्राप्त करने हेतु परिश्रम करना आर्थिक पुरुषार्थ है। ईश्वरीय सृष्टिक्रम में हमें निरन्तर कर्म करने की शिक्षा मिलती है। हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं वह निरन्तर अपनी कक्षा में भ्रमण करती रहती है। हम जो अन्न खाते हैं, वस्त्र पहनते हैं और जिन घरों में रहते हैं वे सब अत्यन्त परिश्रम से ही प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है–'**कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः**' अर्थात् मनुष्य कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। यह प्राणियों का स्वाभाविक धर्म है कि बिना कर्म किए हम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते हैं। इस कारण से हमें कर्म अवश्य करना चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है कि प्रारब्ध केवल बीजरूप है। किसान भूमि को जोत कर खाद डालने के बाद उसे जल से सिंचित करता हैं उसके बाद ही बीज बोने पर अन्न उत्पन्न होता है। ऐसे ही कर्मों का प्रारब्ध रूप बीज मनुष्य द्वारा परिश्रम करने पर सफलता के वृक्षरूप में बढ़कर सुखरूप फल देता है।

इसके विपरीत आलस्य शत्रु के समान है। भर्तृहरि का कहना है–'**आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः**' अर्थात् मनुष्यों के द्वारा आलस्य किया जाना उनके शरीर का महान् शत्रु है। महाभारत में कहा गया है कि यह निश्चित समझें कि जो मनुष्य आलसी होगा वह कभी धनाढ्य नहीं हो सकेगा, न उसको उत्तम मित्र मिलेंगे, न ही उसे उत्तम पदार्थ मिलेंगे। यदि मिल भी गए तो शीघ्र नष्ट हो जायेंगे। आलस्य की अपेक्षा निष्फल हुआ पुरुषार्थ भी उत्तम है, पुरुषार्थी को यह संतोष रहता है कि उसने अपना कर्तव्य पूर्ण किया है। मनुष्य की दुःख से निवृत्ति और सुख को प्राप्त करने के साधन हेतु आलस्य को त्याग कर पुरुषार्थ करना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने समाज को अन्धविश्वासों, आडम्बर और अज्ञान से मुक्ति दिलाने हेतु वेदमार्ग पर आधारित आर्यसमाज की स्थापना की। उनके कार्यों और सिद्धान्तों को प्रसस्त करने के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ की आवश्यकता थी और इस कार्य के लिए अनेक ऋषि भक्तों ने अपना जीवन अर्पित किया, उनमें एक मुख्य व्यक्ति महात्मा मुंशीराम थे जो संन्यास धारण करने के बाद स्वामी श्रद्धानन्द कहलाए। वे एक सफल लेखक और साहित्यकार थे। उनके कार्यों की विशिष्टता इस दृष्टि से भी विवेचनीय है कि उन्होंने धर्म, समाज, राष्ट्र और शिक्षा के क्षेत्रों में मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया। यह देखा जाता है कि सामान्य लोग अपने जीवन के कालिमापूर्ण पृष्ठों को दूसरों को प्रकट करने में हिचकते हैं, परन्तु आपने अपने जीवन के भले-बुरे सभी प्रसंगों को अपनी जीवनी में प्रकट करते हुए एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है कि एक भटका हुआ व्यक्ति भी अपने पुरुषार्थ और त्याग के द्वारा जीवन में उन्नति प्राप्त कर समाज और राष्ट्र के उत्थान में अपना अपूर्व योगदान दे सकता है। ऐसे पुरुषार्थ प्रेमी स्वामी श्रद्धानन्द को श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए यह विशेषांक सुधी पाठको की सेवा में अर्पित किया जा रहा है।

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

वेदामृत

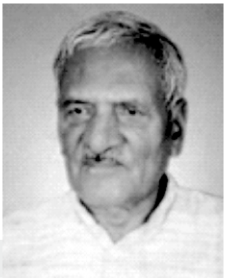

‘प्रभु का सखा विफल नहीं होता’

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां, यज्ञस्य केतुर् मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं, देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्।। **ऋग्वेद 1.96.6**

ऋषिः कुत्सः आंगिरसः। देवता अग्निः। छन्दः त्रिश्टुप्।।

[परमात्मारूप अग्नि] (रायः) ऐश्वर्य का (बुध्नः) मूल, (वसूनां) वसुओं का (संगमनः) संगमकर्त्ता, (यज्ञस्य) यज्ञ का (केतुः) प्रज्ञापक, [और] (वेः) कर्मशील जीवात्मा के (मन्मसाधनः) विचारित कार्यों को सिद्ध करनेवाला [है]। (अमृतत्वं) मोक्षरूप अमरत्व की (रक्षमाणासः) रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वान लोग (एनं) इस (द्रविणोदां) धन और बल के दाता (अग्निं) परमात्मा को (धारयन्) धारण करते हैं।

आओ, हम ‘द्रविणोदा अग्नि’ को हृदय में धारण करें। तुम पूछोगे, यह द्रविणोदा अग्नि कौन है? द्रविण धन और बल का नाम है, उसका दाता परमेश्वर ही द्रविणोदा अग्नि कहलाता है। वह परम प्रभु निर्धनों को आत्मिक और भौतिक धन देता है, निर्बलों को आत्मिक और शारीरिक बल प्रदान करता है।

वह सर्वविध सम्पत्ति का मूल है। ये जो विविध सत्य, अहिंसा, वशित्व आदि आध्यात्मिक सम्पत्तियां हैं और जो हीरे–मोती, सोना–चांदी आदि सांसारिक सम्पत्तियां हैं, इन सबका मूल स्रोत वही है। वह वसुओं का संगमकर्त्ता है। ऋषियों ने आठ वसु बताये हैं–अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, द्युलोक, चन्द्रमा अेर नक्षत्र। इनमें पारस्परिक संगति लानेवाला वही है, अन्यथा ये एक–दूसरे के विरोधी होकर आपस में ही टकराकर चूर–चूर हो जाते। वह ‘यज्ञ का केतु’ है, यज्ञ की ध्वजा बनकर लहरा रहा है, यज्ञ का प्रज्ञापक है। उसका अपना कोई भी कार्य यज्ञहीन नहीं है, अतएव हम सबको यज्ञ का उपदेश कर रहा है। वह ‘मन्म–साधन’ है, कर्मशील जीवात्मा के विचारित कार्यों को सिद्ध करनेवाला है। जीवात्मा यदि उसे साक्षीरूप में अपने सम्मुख रखकर किन्हीं सत्कार्यों को करने का संकल्प करता है, तो वह उसके उस संकल्प को पूर्ण कराने में प्रबल सहायक बनता है। अतएव जो देव हैं, दिव्यता के पुजारी हैं, ज्ञान और चरित्र से विद्वान् हैं, वे अपने जीवनकाल में ही इस द्रविणोदा अग्नि की कृपा से अमृतत्व प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाते हैं और निधि के समान उस अमृतत्व की निरन्तर रक्षा करते हुए धन एवं बल के प्रदाता इस द्रविणोदा अग्नि को स्थायीरूप से धारण कर लेते हैं, अपनी अन्तरात्मा का अनिवार्य अंग बना लेते हैं।

आचार्य डॉ0 रामनाथ वेदालंकार
की पुस्तक वेद-मंजरी से साभार

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल काँगड़ी का प्रारम्भिक काल

–डॉ० कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

महात्मा मुंशीराम जी ने काँगड़ी ग्राम में सन् 1902 में गुरुकुल की स्थापना की। वे लगातार पन्द्रह वर्षों तक उसके मुख्य अधिष्ठाता और आचार्य के रूप में कार्य करते रहे और उसके बाद अप्रैल, 1917 में संन्यास ग्रहण कर स्वामी श्रद्धानन्द कहलाये। उसके बाद भी कुछ समय फरवरी, 1920 से जून, 1921 तक उन्होंने गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता के कार्य का संचालन किया। जिस समय स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल काँगड़ी से विदा ली, गुरुकुल की इमारतें प्रायः कच्ची थीं और उन पर टिन की छत थी। विद्यालय के पढ़ाई के कमरों, भोजन भण्डार, चिकित्सालय और यज्ञशाला की दशा भी इसी प्रकार की थी। महाविद्यालय विभाग के ब्रह्मचारियों के निवास के लिए जो आश्रम था, उसकी छत भी फूंस की बनी थी। गुरुकुल के प्राध्यापक, शिक्षक और अन्य विविध कर्मचारी भी कच्ची ईंटों के मकानों में ही रहा करते थे। महात्मा मुंशीराम जी के बंगले पर भी फूंस की छत थी। सन् 1908 में महाविद्यालय विभाग की पढ़ाई के लिए पक्के भवन बनने प्रारम्भ हो गए थे। इसके कुछ वर्षों के बाद पुस्तकालय और विज्ञान की प्रयोगशाला की इमारतें भी बनकर तैयार हो गयी थीं। उस समय पर गुरुकुल काँगड़ी आने–जाने का मार्ग बहुत विकट था। इसका निकटतम रेलवे स्टेशन हरिद्वार था। गंगा पर कोई पुल भी नहीं था। कनखल स्थित दक्ष मन्दिर से गुरुकुल का मार्ग गंगा के चौड़े पाट से होकर जाता था। यह मार्ग भी रेत और पत्थरों से भरा था। गंगा की धाराओं पर 2–3 बड़े–छोटे कच्चे पुलों पर से होकर गुजरना पड़ता था। गंगा में बाढ़ आ जाने पर पुल टूट जाते थे, उस समय गुरुकुल आने–जाने के लिए एकमात्र साधन तमेड़े रह जाते थे, जिन्हें तेल के कनस्तरों को बाँस की खपच्चियों से बांधकर बनाया जाता था। एक तमेड़े पर तीन से अधिक आदमी नहीं बैठ सकते थे। उस समय यह कठिनाई थी कि वर्ष में सात मास के लगभग केवल तमेड़ों से ही गुरुकुल तक का सफर तय किया जा सकता था। यात्रा की अधिक कठिनता के होते हुए भी गुरुकुल के वार्षिक उत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष हजारों लोग आया करते थे। उस समय गुरुकुल के वार्षिकोत्सव ने आर्यसमाज के एक बड़े पर्व का स्थान प्राप्त कर लिया था। गुरुकुल का प्रथम वार्षिकोत्सव मार्च सन् 1903 में हुआ था। इसमें भारत के विभिन्न भागों से लगभग 4000 लोग सम्मिलित हुए थे। आगे के वर्षों में इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई और सन् 1916 के वार्षिकोत्सव में उपस्थित व्यक्तियों की संख्या लगभग पचास हजार थी। सभी के निःशुल्क निवास की व्यवस्था गुरुकुल द्वारा की गई थी। उस समय पर केवल आर्य लोग ही नहीं अपितु राजकीय नेता, शिक्षा शास्त्री और अनेक विद्वान् गुरुकुल के कार्यक्रमों से प्रभावित रहते थे।

शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल ने एक अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का बहिष्कार करते हुए भारत की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित शिक्षा प्रणाली से नैतिकता का मार्ग अपनाने वाले सच्चे भारतीय तैयार करने की एक निर्माणस्थली के रूप में गुरुकुल की अपनी विशिष्ट पहचान बन गई थी। इन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों और प्राप्तियों पर विचार करते हुए ही उस समय अनेक महान् हस्तियां जैसे– डा0 भगवानदास, मेजर बी0 डी0 बसु, श्री सैडलर,

आशुतोष मुखर्जी, श्रीनिवास शास्त्री, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, पण्डित मोतीलाल नेहरू, डा0 अन्सारी, श्री जमनालाल बजाज, और बिड़लाजी ने गुरुकुल में पधार कर इसके प्रति अपने स्नेह और सम्मान को प्रकट किया था। विदेशी सभ्रान्तजनों में मि0 रेम्जे मेकडोनाल्ड, ग्रेट ब्रिटेन की लेबर पार्टी के नेता, जो बाद में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री बने, मि0 सी0 एफ0 एन्ड्रूज ओर मि0 पियर्सन जैसे विद्वान् प्रमुख थे। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के राज्यपाल सर जेम्स मेस्टन अनेक बार गुरुकुल पधारे थे। इन विदेशी यात्रियों के आतिथ्य में गुरुकुल ने कभी अपनी सांस्कृतिक परिपाटी और विशेषता का त्याग नहीं किया। लार्ड चेम्सफोर्ड का स्वागत संस्कृत के श्लोकों से किया गया था और उनके सम्मान में दी गई टी पार्टी में तुलसी की चाय और पकौड़े भेंट किए गए थे। गुरुकुल में अपनाए गए सांस्कृतिक शिष्टाचार और शिक्षा प्रणाली से विकसित वातावरण ने गुरुकुल काँगड़ी को देश–विदेश के लोगों के आकर्षण का केन्द्र बना दिया था।

हमारे ऋषियों और शिक्षाविदों ने शिक्षा कैसी होनी चाहिए इस पर बहुत चिन्तन–मनन किया और गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा पद्धति का विकास हुआ परन्तु कालान्तर में इसमें महाभारतकाल के बाद से ही अत्यन्त गिरावट आने लगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती के समय तक काफी गिरावट हो चुकी थी। महर्षि ने समस्त तथ्यों का अवलोकन करने के बाद प्राचीन भारत के आचार्यकुलों, आरण्यक–आश्रमों और विद्यापीठों को दृष्टिगत करते हुए शिक्षा के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं, उनका संक्षेप में विवरण निम्न प्रकार हैः–

१. बालकों और बालिकाओं को शिक्षा के लिए पाठशालाओं (आचार्यकुलों और गुरुकुलों) में भेजना माता–पिता के लिए अनिवार्य होना चाहिए।

२ लड़कों और लड़कियों की पाठशालाएं पृथक् व एक दूसरे से दूर होनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सहशिक्षा के विरोधी थे। उनके विचार से कन्याओं की शिक्षण सस्ंथाओं में सब शिक्षक, कर्मचारी व सेवक स्त्रियां होनी चाहिए और पुरुषों की शिक्षण संस्थाओ में सब पुरुष होने चाहिए।

३. गुरुकुल प्रवेश के बाद शिक्षा समाप्ति तक विद्यार्थी का परिवार से कोई सम्बन्ध न रहे।

४. गुरुकुल नगरों से दूर हों।

५. विद्यार्थी ब्रह्मचारी यम नियमों का पालन करने वाले और इन्द्रिय–संयमी रहें।

६. आचार्य विद्यार्थियों से पुत्रवत् व्यवहार करें।

७. आर्ष पाठ–विधि से अध्ययन के बाद चरक, सुश्रुत, आदि ऋषि–मुनि प्रणीत ग्रन्थ वैद्यक शास्त्र, चिकित्सा आदि चार वर्ष के भीतर पढ़ावें।

८. आचार्य के रूप में अध्यापक धार्मिक, विद्वान् और सदाचारी हों।

६. समावर्त्तन संस्कार के समय विद्यार्थी के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण का निर्धारण किया जाए।

महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति और पठन–पाठन विधि को दृष्टिगत रखते हुए आर्यसमाज द्वारा जो विभिन्न शिक्षण संस्थाएं स्थापित की गयीं थीं, प्रारम्भ में इन्हें पाठशाला नाम दिया गया था जिनके लिए बाद में 'गुरुकुल' नाम का प्रयोग किया था। वर्तमान समय में सम्पूर्ण भारत में दो सौ पचास से अधिक गुरुकुल स्थापित हैं जिनमें महर्षि के शिक्षण विषयक मन्तव्यों को क्रियान्वित करने का प्रयास किया जा रहा है और आंशिक रूप से यह प्रयास सफल भी रहा है। गुरुकुल काँगड़ी आदि गुरुकुल शहर के कोलाहल से बहुत दूर एकान्त प्रदेश में खोले गए थे। प्रारम्भ में गुरुकुलों की अपनी पाठविधि थी, वे अपनी परीक्षाएं स्वतन्त्र रूप से लेते थे और अपनी ही उपाधियां प्रदान करते थे। आधुनिक समय में बिना औपचारिक उपाधि के युवक–युवतियों के

द्वारा नौकरियां मिलना सम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में यह विचार किया गया कि सरकारी उपाधियां प्राप्त करवानी चाहिएं और सरकारी परीक्षाओं में बैठ कर, इन नौकरियों को भी प्राप्त करना चाहिए। ऐसे गुरुकुल भी हो सकते हैं जिनकी पाठविधि सरकारी शिक्षण संस्थाओं के समान हो और विद्यार्थियों के लिए छात्रावास आदि ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन बिताने की पूरी सुविधा हो। अनेक गुरुकुलों के संचालकों ने अपने विद्यार्थियों को यह अनुमति दे दी कि वे गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते हुए सरकारी संस्थाओं की परीक्षाएं भी दे सकते हैं।

प्रारम्भ में गुरुकुलों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी परन्तु आर्थिक समस्या से विवश होकर गुरुकुलों में भोजन, वस्त्र आदि के लिए शुल्क लिया जाने लगा। समय की आवश्यकता और स्नातकों की आजीविका की समस्या को देखते हुए कई गुरुकुलों ने अपने पाठ्यक्रम में परिवर्तन भी कर लिया। कुछ गुरुकुल ऐसे भी हैं जिन्होंने आर्षपाठ विधि दृढ़ रखते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि का अनुसरण करते रहना ही श्रेयस्कर समझा है। ऐसे गुरुकुलों में पाणिनि महाविद्यालय रेवली प्रमुख है। आज हम तकनीकी युग में रह रहे हैं, जहां अधिक बल तकनीकी विषयों पर होने के कारण रोजगार के अवसर भी इन्हीं विषयों से सम्बन्धित मिलते हैं। गुरुकुल से शिक्षा लिए छात्रों के पास यदि किसी विश्वविद्यालय की डिग्री होती है तो केवल संस्कृत अध्यापक का कार्य मिल सकता है और उसके लिए भी बी0 एड0 करना अनिवार्य होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे समस्त गुरुकुलों जहां शास्त्री आदि की उपाधि के लिए पढ़ाया जाता है, में बी0 एड0 की पढाई भी अनिवार्य रूप से करायी जानी चाहिए।

जिन उच्च आदर्शों और उद्देश्यों को सामने रखते हुए गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना की गई थी, उन्हें क्रियान्वित करने में प्रारम्भ में अनेक कठिनाइयां आयीं थीं। गुरुकुल के स्नातकों के लिए सरकारी नौकरी के द्वार बन्द थे। स्वामीजी इस समस्या को भलीभांति अनुभव करते थे, इसीलिए वे गुरुकुल को ऐसे स्वतंत्र विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करना चाहते थे, जिसमें वेदादि शास्त्रों के साथ–साथ कृषि, विज्ञान, शिल्प, उद्योग और चिकित्साशास्त्र के अध्यापन की समुचित व्यवस्था हो। इन विषयों की शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी गुरुकुल के स्नातक बनेंगे वे स्वतंत्र व्यवसाय द्वारा आजीविका कमा सकेंगे। इसी कारण उन्होंने गुरुकुल में आयुर्वेद की शिक्षा की व्यवस्था प्रारम्भ की थी। गुरुकुल कांगड़ी से शिक्षा प्राप्त किए विद्यार्थियों ने न केवल वेद और वैदिक संस्कृति का प्रचार/प्रसार किया है, अपितु ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करते हुए अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। आज गुरुकुल कांगड़ी अपने वर्तमान स्वरूप में काफी विकास कर चुका है, परन्तु क्या हम स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा किए गए पुरुषार्थ और उनके सपनों के अनुरूप गुरुकुल को विकसित कर पाए हैं, यह सदैव एक विचारणीय प्रश्न रहेगा।

समुद्र की लहरें हमें इसलिए प्रेरणा नहीं देतीं कि वे गिरती–उठती है

बल्कि इसलिए कि

"वे कुछ गिर कर, हर बार उठने की कोशिश करती हैं"

स्वामी श्रद्धानन्द जी का आर्यसमाज के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान

–मनमोहन कुमार आर्य

महाभारत युद्ध के बाद विद्वानों की भारी क्षति तथा राजकीय अव्यवस्था के कारण धर्म एवं संस्कृति की उन्नति रुक गई और इनका पतन आरम्भ हुआ जो समय के साथ वृद्धि को प्राप्त होता गया। इसी का परिणाम ईसा की आठवीं शताब्दी से देश में परतन्त्रता का होना आरम्भ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में देश अंग्रेजों का पराधीन था। इस समय सत्य सनातन वैदिक धर्म का सत्यस्वरूप विलुप्त हो चुका था और इसका स्थान अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों तथा वेद विरुद्ध मान्यताओं ने ले लिया था। ऐसे समय में 12 फरवरी, 1825 ई. को गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर ऋषि दयानन्द ने जन्म लेकर जनजागरण करते हुए वैदिक धर्म व संस्कृति का शुद्धस्वरूप प्रस्तुत किया और उसका प्राणपण से प्रचार किया। ईश्वर ने महर्षि दयानन्द को विद्या तथा अविद्या वा सत्य व असत्य का विवेक करने वाली विमल बुद्धि दी थी। समाज सुधार, अज्ञान तथा अन्धविश्वास दूर करने सहित वेदों का प्रचार करने की प्रेरणा उन्हें अपने विद्यागुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती से मिली थी। ऋषि दयानन्द ने चुनौती देते हुए घोषणा की थी कि वेद ही वस्तुतः संसार की समस्त मानव जाति का एकमात्र धर्मग्रन्थ है। वेदानुकुल मान्यतायें व सिद्धान्त ही ईश्वर प्रदत्त होने से उन्हें स्वीकार थे और वेद विरुद्ध सभी मान्यताओं व सिद्धान्तों का वह प्रमाणों, युक्तियों व तर्कों से खण्डन करते थे। उनके समय में संसार का कोई वेदेतर विद्वान उनकी किसी मान्यता का युक्ति व प्रमाण के साथ खण्डन नहीं कर सका। स्वामी दयानन्द के वेद प्रचार के कार्य के कारण ही 30 अक्तूबर, 1883 ई. को उनके विरोधियों द्वारा विषपान कराये जाने से उनकी मृत्यु हुई। उसके बाद स्वामी दयानन्द जी के शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द ने उनके कार्यों को योग्यतापूर्वक पूर्ण किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वामी दयानन्द की वेदों की शिक्षाओं और सिद्धान्तों पर आधारित गुरुकुलीय शिक्षा का उद्धार किया। उन्होंने सन् 1902 में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी जहां वेदों के अनेकानेक विद्वान बनें जिन्होंने शिक्षा, अध्यापन, पत्रकारिता, स्वतन्त्रता आन्दोलन, इतिहास, धर्म प्रचार, शुद्धि, जन्मनाजाति–विरोध में प्रचार व दलितोत्थान आदि कार्यों सहित अनेकानेक समाज सुधार के कार्य किये और वैदिक धर्म का प्रचार कर भारत का गौरवमय इतिहास रचा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वह वैदिक धर्म व संस्कृति के अनुरागी महापुरुष थे। आदर्श ईश्वर भक्त, वेदभक्त, देशभक्त, मानवता के पुजारी, शिक्षा शास्त्री, समाज सुधारक और वेद धर्म प्रचार सहित स्वामी श्रद्धानन्द स्वतन्त्रता आन्दोलन के शीर्ष नेता और दलितों के मसीहा थे। विधर्मियों की शुद्धि का उन्होंने अपूर्व ऐतिहासिक कार्य किया है। उनके द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी व अन्य गुरुकुल आज भी वैदिक धर्म व संस्कृति के उत्थान में अपनी विशेष भूमिका निभा रहे हैं। स्वामी जी ने देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। रालेट एक्ट के विरोध में सन् 1919 में उन्होंने दिल्ली में अंग्रेज सरकार

के विरोध में आन्दोलन के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में ली थी और उसे सफल किया था। जिस आन्दोलन का उन्होंने नेतृत्व किया था, उसके जलूस के चांदनी चौक आने पर अंग्रेजों के गुरखा सैनिकों ने स्वामी जी पर अपनी बन्दूकों की संगीने तान दी थी। तभी भीड़ को चीर कर स्वामी श्रद्धानन्द जी सैनिकों के सामने आये थे और सीना खोलकर सैनिकों को ललकारते हुए बोले थे, 'हिम्मत है तो मेरे सीने पर मारो गोली'। स्वामी जी की यह ललकार, उनकी वीरता, निर्भयता, निडरता व साहस को देखकर वहां तैनात अंग्रेज अधिकारी घबरा गया था और उसने सैनिकों को बन्दूकें नीची करने का आदेश दिया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन की यदि अन्य घटनाओं को छोड़ भी दिया जाये तो यही घटना उन्हें महान् बनाने के लिए काफी है। इससे जुड़ी घटना यह भी है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी की वीरता की यह खबर पूरी दिल्ली और देश भर में फैल गई थी। इससे प्रभावित होकर दिल्ली की जामा मस्जिद के मिम्बर से उन्हें मुस्लिमों की एक सभा को सम्बोधित करने के लिए आमंत्रित किया गया था। स्वामी जी ने वहां पहुंच कर भी एक नये इतिहास की रचना की जो वैदिक धर्म के इतिहास की घटनाओं में अन्यतम घटना है। उन्होंने जामा मस्जिद के मिम्बर से वेद मन्त्र 'ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथः। अधा ते सुम्नी महे।।' बोल कर अपना सम्बोधन आरम्भ किया था और भारी मुस्लिम जनसमूह में उनकी जय जयकार हुई थी। उसके बाद जामा मस्जिद के मिम्बर से सम्बोधन देने का सम्मान किसी गैर मुस्लिम व्यक्ति को नहीं मिला। प्रत्यक्ष दर्शियों व समकालिन लोगों ने लिखा हैं कि चांदनी चौक की घटना से स्वामी श्रद्धानन्द जी दिल्ली के बेताज बादशाह बन गये थे। बताते हैं कि स्वामी जी ने जामा मस्जिद से अपने सम्बोधन में कहा था कि हिन्दी का हम शब्द 'ह' से हिन्दू व 'म' से मुसलमान को दर्शाता है और यह शब्द दोनों समुदायों की एकता का प्रतीक है।

देश की स्वतन्त्रता के इतिहास में अमृतसर में 13 अप्रैल, सन 1919 की बैसाखी के दिन जलियांवाला बाग की नरसंहार की घटना प्रसिद्ध है जिसमें शान्तिपूर्ण सभा कर रहे हजारों स्त्री व पुरुषों को बिना चेतावनी दिए गोलियों से भून दिया गया था। गोली चलाने का आदेश ब्रिगेडियर जनरल रेजीनाल्ड डायर ने दिया था। इस गोलीकाण्ड में लगभग 1500 लोग मरे थे और 1200 से अधिक घायल हुए थे। इसके विरोध में चेन्नई में कांग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया गया था। जलियावालाा–बाग काण्ड के विरोध में अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन आयोजित करने के लिए कोई उपयुक्त नेता न मिलने पर स्वामी श्रद्धानन्द जी को अमृतसर में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष बनाया गया था। इसकी एक विशेषता यह थी कि यहां स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपना स्वागत भाषण हिन्दी में दिया था। इस घटना से स्वामी श्रद्धानन्द कांग्रेस के राष्ट्रीय नेता की कोटि के नेता बन गये थे। डा. विनोद चन्द्र विद्यालंकार द्वारा सम्पादित 'स्वामी श्रद्धानन्द – एक विलक्षण व्यक्तित्व' ग्रन्थ में इस घटना का विस्तार से वर्णन किया गया है। पाठकों को इस ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये। इससे स्वामी श्रद्धानन्द जी के महान व्यक्तित्व को भली प्रकार से जाना जा सकता है।

आगरा व मथुरा के आसपास रहने वाले मलकाने राजपूत जिनके सभी रीति–रिवाज व पूजा–पद्धतियां आदि हिन्दुओं के समान थीं, मुसलमान कहलाते थे। वह मुस्लिम मलकाने राजपूत चाहते थे कि उनको उनके पूर्वजों के हिन्दू धर्म में शामिल कर लिया जाये। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था और भारतीय शुद्धि सभा की स्थापना कर लगभग 2 लाख की संख्या में मलकाने राजपूतों को शुद्ध कर उन्हें हिन्दू धर्म में प्रविष्ट कराया था। उनका यह कार्य इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है।

यह शुद्धि वस्तुतः वेद प्रचार आन्दोलन है जिसका एक उद्देश्य भय व प्रलोभन आदि अनेक कारणों से अतीत में धर्मान्तरित अपने बिछुड़े भाईयों को ईश्वरीय ज्ञान वेद की शरण में लाना था। आर्य जाति इस कार्य के महत्व को जानकर इसका अनुसरण करेगी तो इतिहास में जीवित रहेगी। हम यहां यह भी बता दें कि आर्यसमाज का वेद प्रचार और शुद्धि का आन्दोलन सत्य को ग्रहण करने और असत्य के त्याग करने के सिद्धान्त पर आधारित है। आर्यसमाज सभी मतावलम्बियों की धर्म विषयक जिज्ञासाओं का सन्तोषजनक समाधान करता है जबकि अन्य ऐसा नहीं करते। मनुष्य जाति की उन्नति का एकमात्र कारण सत्य का प्रचार ही है। आर्यसमाज को ईश्वर प्रदत्त सत्य ज्ञान के भण्डार वेदों का संगठित होकर पुरजोर प्रचार करना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि वेदाज्ञाओं का पालन ही धर्म है। वेद के शब्द 'कृण्वन्तो विश्मार्यम' में विश्व के लोगों को श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव एवं आचरण वाला बनाने की आज्ञा दी गई है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दलितोत्थान का कार्य भी प्रभावशाली रूप से किया। कांग्रेस में रहते हुए उन्होंने अनुभव किया कि उनके इस कार्य में कांग्रेस द्वारा वह प्राथमिकता व सहयोग नहीं मिल रहा है जिसकी अपेक्षा व आवश्यकता थी। इस कारण उन्होंने अपना रास्ता बदलते हुए कांग्रेस छोड़ दी। इतिहास में यह भी पढ़ने को मिलता है कि पंजाब में किसी स्थान पर सवर्ण हिन्दू अपने कुओं से दलितों को पानी नहीं भरने देते थे। ऐसे स्थानों पर स्वामी श्रद्धानन्द और उनके आर्यसमाजी सहयोगी स्वयं पानी भरकर दलित भाईयों के घर पहुंचाते थे। हम अनुभव करते हैं कि आर्यसमाज व इसके नेताओं ने समाज के उपेक्षित वर्ग को दलित नाम दिया और उनके उत्थान के लिए दलितोत्थान का आन्दोलन चलाया। आर्यसमाज के प्रचार एवं कार्यों से जन्मना जातिवाद के प्रयोग में कमी आई और दलित बन्धुओं ने भी उन्नति की। हमारे सामने ऐसे उदाहरण हैं कि कुछ दलित परिवारों के बन्धु गुरुकुलों में पढ़कर वेदों के विद्वान बने, वेदों पर टीकायें आदि लिखी, मांस–मदिरा का सेवन त्यागा, स्वास्थ्यप्रद घी–दुग्ध आदि का भोजन किया, आर्यसमाज में हिन्दुओं के घरों में पूजा पाठ कराने वाले सम्मानित पुरोहित बनें और समाज में सम्मानित स्थान पाया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सद्धर्म प्रचारक पत्र का सम्पादन व प्रकाशन भी किया था। यह पंजाब में बहुत लोकप्रिय पत्र था। पहले यह उर्दू में प्रकाशित किया जाता था। ऋषि दयानन्द के हिन्दी को महत्व दिये जाने के कारण आपने, पंजाब में उर्दू पाठको की बहुसंख्या होने पर भी, अपने पत्र को उर्दू के स्थान पर हिन्दी में प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था। इससे उन्हें भारी आर्थिक घाटा भी हुआ था परन्तु धर्म को महत्व देने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आर्थिक घाटे की चिन्ता नहीं की। स्वामी जी आर्यसमाज, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद पर रहे। ऋषि दयानन्द जी का खोजपूर्ण जीवन चरित लिखाने का श्रेय भी आपको है। ऋषि जीवन के अनुसंधानकर्ता और सम्पादक रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी आपके गहरे मित्र व सहयोगी थे। दोनों में गहरे आत्मीय सम्बन्ध थे। आपने पं. लेखराम जी की एक मुस्लिम आततायी द्वारा हत्या के बाद उनका जीवन चरित्र भी लिखा है। पंडित लेखराम जी का जीवनचरित्र वैदिक धर्म पर 23 दिसम्बर 1926 को शहीद हुए स्वामी श्रद्धानन्द का अपने से पहले धर्म की वेदी पर शहीद हुए पं. लेखराम जी को श्रद्धांजलि है। इसे देश की युवा पीढ़ी को अवश्य पढ़ना चाहिये। स्वामी श्रद्धानन्द जी एक बहुत अच्छे लेखक भी थे। आप अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी आदि भाषाओं के विद्वान थे। आपने

हिन्दी व उर्दू में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपका समस्त साहित्य, कुछ उर्दू आदि ग्रन्थों को छोड़कर, 11 खण्डों में वैदिक साहित्य के प्रकाशक 'मै. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली' से प्रकाशित हुआ है। इसका नया संस्करण इसी प्रकाशक द्वारा दो खण्डों में भव्य रूप में पुनः प्रकाशित किया गया है। स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' लिखी है जो किसी उपन्यास की तरह ही रोचक होने के साथ उनके जीवन की सभी प्रकार की घटनाओं से युक्त है। इसमें आपने अपने जीवन की किसी भी गुप्त बात को छिपाया नहीं है। आत्मकथा साहित्य में यह बेजोड़ ग्रन्थ है। वेद भाष्यकार डा. आचार्य रामनाथ वेदालंकार जी के सुपुत्र डा. विनोदचन्द्र विद्यालंकार जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर 'एक विलक्षण व्यक्तित्व : स्वामी श्रद्धानन्द' नाम से एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ की महत्ता का अनुमान इसे पढ़कर ही लगाया जा सकता है। हर साहित्य प्रेमी को इस ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये।

जिन दिनों स्वामी श्रद्धानन्द जी गुरुकुल कांगड़ी का संचालन करते थे तो वहां श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी भी आये थे। गांधी जी यहां आने से कुछ समय पूर्व ही दक्षिण अफ्रीका से भारत आये थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आपको मिस्टर गांधी न कहकर महात्मा गांधी के नाम से सम्बोधित किया था। गांधी जी के नाम के साथ 'महात्मा' शब्द का प्रथम प्रयोग स्वामी जी ने ही किया जो गांधी जी की मृत्यु तक उनके नाम के साथ जुड़ा रहा। यह बता दें कि जब गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में आन्दोलन किया था तो स्वामी श्रद्धानन्द जी के कागड़ी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने भारत में मेहनत व मजदूरी करने सहित अपने भोजन आदि व्यय में कमी करके एक अच्छी बड़ी धनराशि गांधी जी को आन्दोलन में सहायतार्थ अफ्रीका भेजी थी। एक बार इंग्लैण्ड की संसद में विपक्ष के नेता रैम्जे मैकडानल्ड, जो बाद में इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री बने, गुरुकुल आये और यहां स्वामी जी के निकट रहे। आपने गुरुकुल विषयक अपने संस्मरणों में स्वामी श्रद्धानन्द जी को जीवित ईसा मसीह के रूप में स्मरण किया था। उन्होंने यह भी लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति सेंट पीटर की मूर्ति बनाना चाहे तो मैं उसे स्वामी श्रद्धानन्द की भव्य मूर्ति को देखने की संस्तुति करूगां। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन की अनेक प्रेरणाप्रद घटनायें हैं जिसके लिए उनका जीवन चरित व श्रद्धानन्द ग्रन्थावली पढ़ना उपयुक्त है। अधिक विस्तार न कर हम लेख को विराम देते हुए उस आदर्श महापुरुष, ईश्वर, वेद व देश भक्त, गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के उद्धारक, समाज सुधारक, दलितोद्धारक, शुद्धि का सुदर्शन चक्र चलाने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी को उनके बलिदान दिवस पर अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

यदि हर व्यक्ति आपसे प्रसन्न है,

तो इसका सीधा सा अर्थ है कि

"आपने अपने जीवन में अवश्य ही अनेक समझौते किए हैं।"

सबको ईश्वर भी प्रसन्न नहीं कर स कता।

आर्य समाज के आज के गौरव

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

परमपिता परमात्मा ने इस शरीर को पूज्या माता श्रीमती हंसा देवी तथा सम्माननीय पिता श्री किशन सिंह जी की पावन गोद में सन् 1938 में 14 अप्रैल को बदरपुर के निकट मोलड़बंद नामक गांव (दिल्ली) में उत्पन्न किया। मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानता हूं, जो परम दयालु परमात्मा ने मुझे ऐसी मधुर–भाषिणी, बुद्धिमती, सुशीला और दयावती धार्मिकी माता तथा पुरुषार्थी, ईमानदार, सुंदर व तार्किक पिता प्रदान किये। हम तीन भाई और एक बहिन थे। बड़े भ्राता का नाम श्री भरत सिंह था। उनसे छोटा मैं था, मेरा नाम चरत सिंह रखा गया। मुझसे छोटी एक बहिन है, जिसका नाम 'भाग्यवती' और छोटे भाई का नाम श्री भागमल है। परम पिता की कृपा से हम सब बहन–भाइयों का बचपन से ही परस्पर बहुत प्रेम रहा। अग्रज श्री भरतसिंह जी तो सचमुच श्रीराम के भाई भरत के समान ही हैं। स्वयं अनपढ़ होते हुए भी आग्रहपूर्वक मुझे अधिक से अधिक शिक्षा दिलाने का प्रयास किया। अनेक कष्ट और अभाव सहते हुए, एवं स्वयं साधारण से वस्त्र पहनते हुए मुझे टाई व सूट पहनाकर कॉलेज में भेजते। उस जमाने में भी इन्जीनियरिंग की पढ़ाई करवा कर "सिविल इंजीनियर" बना दिया।

आपने घर गृहस्थ का उत्तरदायित्व संभालते हुए स्वामी प्रणवानन्द जी (पूर्वनाम आचार्य हरिदेव जी) का सान्निध्य प्राप्त करते हुए सन् 1980 में गुरुकुल गौतम नगर में यजुर्वेद पारायण महायज्ञ के आप मुख्य यजमान बने थे। तदनन्तर यह क्रम निरंतर आगे बढ़ता ही चला गया और 1993 ईस्वी तक आप चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ जिसके ब्रह्मा आर्य जगत् के गौरव कर्मकाण्ड निष्णात स्वामी दीक्षानंद जी होते थे। इस यज्ञ के यजमान पद पर रहने का सौभाग्य आपको मिला। यज्ञ में अनेक विद्वानों के सारगर्भित और प्रेरणादायक वचनों को सुनकर जीवन का कायाकल्प होता चला गया व योग साधना में भी उत्तरोत्तर प्रगति होती चली गई।

आपने अनेक निष्णात योगी जनों से योग साधना सीखी। आपको आर्य जगत् के अनेक गण्यमान्य संन्यासी विद्वानों का भरपूर स्नेह एवं सान्निध्य प्राप्त हुआ, जिनमें महात्मा दयानंद, स्वामी निजानंद, स्वामी दीक्षानंद, स्वामी ओमानन्द, स्वामी प्रणवानंद, स्वामी निर्भयानंद आदि प्रमुख हैं।

योगाभ्यास की निरंतर साधना करते हुए आपने इस दिशा में उत्तरोत्तर प्रगति की है। आपका जीवन अत्यंत सरल, सहज, माधुर्यपूर्ण है। आपका व्यक्तित्व व कृतित्व महान है।

अनेक शिष्य–शिष्याओं के जीवन में योग विषयक शिक्षा प्रदान कर सबका मार्गदर्शन करने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है। जन सामान्य को अध्यात्म, योग की ओर बढ़ने की आप सतत प्रेरणा व मार्गदर्शन करते रहते हैं। जीवन के 82वें वर्ष में पदार्पण चल रहा है।

आप शतायु हों, तथा योग और अध्यात्म की शिक्षा–दीक्षा से सभी आर्य नर नारी, भाई–बहनों को इस दिशा में प्रेरित करते रहें, यही हमारी शुभकामनाएं हैं।

वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा में गुरुकुलों का महत्वपूर्ण योगदान

–मनमोहन कुमार आर्य

ऋषि दयानन्द ने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में प्राचीन भारत में गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का उल्लेख कर उसके व्यापक प्रचार का मानचित्र प्रस्तुत किया था। यह गुरुकुलीय पद्धति प्राचीन भारत में सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल व उसके बाद भी देश व विश्व की एकमात्र शिक्षा पद्धति रही है। इसी संस्कृति में हमारे समस्त ऋषि तथा वैदिक विद्वानों सहित हमारे राम, कृष्ण आदि महापुरुष, राजा–महाराजा व चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुए थे। महाभारत युद्ध के बाद इस शिक्षा पद्धति के संचालन में व्यवधान उत्पन्न हुए और मुस्लिम व अंग्रेजों के राज्य व परतन्त्रता के दिनों में इस शिक्षा पद्धति को समाप्त करने के अनेकानेक प्रत्यक्ष व गुप्त प्रयत्न हुए। यहां तक की शासक लोगों ने तक्षशिला, नालन्दा तथा चित्रकूट आदि के हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य के भण्डारों वा पुस्तकालयों को जलाकर नष्ट कर दिया। इसके पीछे आतताई मनोवृत्ति के लोगों द्वारा वैदिक धर्म व संस्कृति को नष्ट करना ही प्रतीत होता है। अन्य कोई उद्देश्य उनका दृष्टिगोचर व स्पष्ट नहीं होता। ऐसा होने पर भी वैदिक धर्म, संस्कृति, संस्कृत भाषा और वेद आज भी सुरक्षित हैं। संस्कृत संसार की श्रेष्ठतम व प्राचीनतम भाषा स्वीकार की जा रही है। संसार में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद स्वीकार किये गये हैं। ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के सभी रहस्यों का पता देने वाले सर्वोपरि एकमात्र ग्रन्थ वेद ही हैं जो धर्म व साहित्य के ग्रन्थों में शीर्ष स्थान पर सुशोभित है। वेदों की इस महत्ता को स्थापित करने में वेदों व संस्कृत भाषा के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द सरस्वती का महत्वपूर्ण व अतुलनीय योगदान है। उन्होंने न केवल वेद और संस्कृत भाषा की रक्षा में योगदान ही किया अपितु वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा तथा उसके पुनरुद्धार में एक प्रकाश स्तम्भ वा टार्च बियरर की भूमिका निभाई है। सारा देश व विश्व ऋषि दयानन्द के इन कामों सहित सत्य धर्म का ज्ञान कराने, उसका प्रचार करने सहित धर्म–मत–सम्प्रदायों की अविद्या को दूर करने का पुरुषार्थ करने के लिये उनका ऋणी है।

महर्षि दयानन्द ने अपने अपूर्व ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में संस्कृत भाषा की रक्षा एवं गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का उद्धार करने के लिये इसके तीसरे समुल्लास में विस्तार से प्रकाश डाला है और संस्कृत व वेदाध्ययन का पूरा पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है। ऋषि दयानन्द के विचारों से प्रभावित होकर सर्वप्रथम स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध संन्यासी ने सन् 1902 में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के अन्तर्गत हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। प्राचीन वैदिक साहित्य के अध्ययन का यह विश्व का अपने समय का प्रमुख संस्थान बना था। इस गुरुकुल ने विगत 120 वर्षों में देश को अनेक वैदिक एवं संस्कृत भाषा के विद्वान दिये हैं। इन विद्वानों में अनेक वेद भाष्यकार एवं संस्कृत शिक्षकों सहित

पत्रकार एवं स्वतन्त्रता सेनानी सम्मिलित हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी स्वयं ही देश की आजादी में योगदान करने वाले स्वतन्त्रता संग्राम के एक निर्भीक, साहसी, महान देशभक्त, अजेय योद्धा एवं सर्वप्रिय महान नेता थे। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री रहे रैम्जे मैकडानल्ड ने उन्हें जीवित ईसामसीह की उपमा देकर सम्मानित किया था। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना व उसके सफल संचालन से प्रभावित होकर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के अनुयायियों ने समय समय पर देश भर में अनेक गुरुकुलों की स्थापना व संचालन किया जिससे संस्कृत की रक्षा एवं संस्कृत का बोलचाल व लेखन में प्रयोग करने वाले विद्वानों की संख्या में वृद्धि हुई है। आज आर्यसमाज के अनुयायियों द्वारा देश में लगभग पांच सौ गुरुकुलों का संचालन किया जा रहा है जहां प्रतिवर्ष हजारों संस्कृत के विद्वान तैयार होते हैं जिसका प्रभाव न केवल संस्कृत की रक्षा व उसके साहित्य के विस्तार व उन्नति में होता है अपितु ईश्वरीय–ज्ञान वेद पर आधारित सृष्टि के आदि मानव धर्म की रक्षा होती है। गुरुकुलों के अधिकांश विद्वान वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार को अपने जीवन का मिशन बनाते हैं और वैदिक साहित्य की वृद्धि करते हैं जिससे देश व विश्व के लोग लाभान्वित होते हैं। यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि ऋषि दयानन्द और उनके अनुयायी वेदों की शिक्षाओं को धर्म की श्रेष्ठ सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य शिक्षायें सिद्ध कर चुके हैं। वेद मनुष्यों को 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनने का सन्देश देते हैं। श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न मनुष्य जिस प्रक्रिया व पद्धति से बनता है उसी मानव निर्माण पद्धति को धर्म कहा जाता है। इस मानव निर्माण पद्धति में गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार हमारे गुरुकुल संस्कृत और वेद का अध्ययन कराकर मनुष्यों को वेद की शिक्षाओ ंसे परिचित करा रहे हैं और उन्हें सच्चा, श्रेष्ठ, धार्मिक, विद्वान मनुष्य बनाकर देश व समाज का कल्याण कर रहे हैं।

देश में संचालित गुरुकुलों ने संस्कृत और वैदिक साहित्य का अध्ययन कराकर वैदिक धर्म, संस्कृति तथा संस्कृत की रक्षा करने का महान कार्य किया है। संसार में सम्प्रति अनेकानेक मत–मतान्तर प्रचलित हैं जो अपनी विद्या–अविद्या युक्त बातों को मानते हैं। वह अपने मत की मान्यताओं को सत्य पर स्थिर करने का प्रयत्न नहीं करते। ऋषि दयानन्द ने सनातन वैदिक धर्म में आये अवैदिक व अन्धविश्वासों से युक्त विचारों को दूर करने के लिये अपना जीवन लगाया। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसमें सत्यासत्य का निर्णय किया गया है और सामान्य लोगों का इस विषय में मार्गदर्शन किया गया है। स्वामी जी ने वैदिक धर्म सहित सभी मत–मतान्तरों की प्रमुख मान्यताओं की युक्ति एवं तर्क के आधार पर समीक्षा की है और वैदिक मत से अविद्या को दूर करने सहित मत–मतान्तरों की अविद्या से भी देशवासियों सहित विश्व के लोगों को परिचित कराया है। उनका मिशन अभी पूरा नहीं हुआ है। ईश्वर की भी यही प्रेरणा व सदेच्छा है कि मनुष्य असत्य का त्याग कर सत्य का धारण करे। इसी लिये परमात्मा ने जीवात्माओं के कल्याण के लिये सृष्टि के आरम्भ में वेदों का ज्ञान दिया था। वेदों का ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य साधारण से आसाधारण मनुष्य बन सकता है। उसकी अविद्या दूर होकर वह धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त होता है। वेदों के ज्ञान व आचरण के बिना मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को नहीं जान सकता और न ही प्राप्त कर सकता है। वेद मनुष्य को सभी दुःखों को दूर कर उसे मोक्षगामी बनाते हैं। भारतवासियों पर ऋषि दयानन्द व उनसे पूर्व के ऋषियो ंकी यह महती कृपा रही है कि उन्हें उत्तराधिकार में वेद और वैदिक धर्म सहित श्रेष्ठ विचारों व मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति में सहायक कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त हुआ है। हमारे गुरुकुल हमारे देशवासियों को संस्कृत व वेदों का अध्ययन कराकर संस्कृत के विद्वान व वेद–धर्म प्रचारक उपलब्ध करा रहे हैं। यह हमारे

गुरुकुलों का धर्म एवं संस्कृति की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है।

वेद, धर्म, संस्कृति और संस्कृत भाषा की रक्षा में गुरुकुलों का सर्वोपरि योगदान है। हमें सभी वेदभाष्यकार एवं संस्कृत के बड़े बड़े विद्वान अपने गुरुकुलों से ही मिले हैं। यदि ऋषि दयानन्द ने गुरुकुलों की स्थापना की प्रेरणा न की होती तो आज हमें गुरुकुलों से मिले संस्कृत के विद्वान न मिले होते जिनकी अनुपस्थिति में वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा न हो पाती। संस्कृत भाषा सभी भाषाओं से प्राचीन, श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण है एवं संसार की सभी भाषाओं की जननी है। अमेरिका की संस्था नासा ने भी संस्कृत को श्रेष्ठ वैज्ञानिक भाषा स्वीकार किया है। संसार के अनेक देशों में संस्कृत का अध्ययन कराया जाता है। विदेशों के निष्पक्ष विद्वान संस्कृत भाषा के शब्दों, वाक्य रचना और इसकी भाषागत विशेषताओं पर मुग्ध हैं। विदेशी मुख्यतः यूरोपवासी तो संस्कृत की ओर आकृष्ट हो रहे हैं जबकि हमारी सरकारें व लोग संस्कृत की उपेक्षा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारे गुरुकुलों का महत्व बढ़ जाता हैं। उन्हें संस्कृत के विद्वान तैयार कर देश विदेश में अध्यापन हेतु भेजने होंगे जिससे संस्कृत की रक्षा होकर वेद एवं धर्म व संस्कृति की भी रक्षा होगी। गुरुकुलों का मुख्य उद्देश्य ही संस्कृत का प्रचार व वेदाध्ययन कराकर वैदिक धर्म व संस्कृति का दिग्दिगन्त प्रचार व प्रसार करना है। यही आर्यसमाज का भी उद्देश्य एवं लक्ष्य है। इसी की प्रेरणा हमें वेद के 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' शब्दों से मिलती है। ईश्वर करे कि हमारे सभी गुरुकुल वेद और संस्कृत भाषा के प्रचार का कार्य सुगमता से करते रहे। देश व विश्व के लोग सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग का व्रत ग्रहण करें और सत्य की प्राप्ति के लिये ऋषियों द्वारा प्रदत्त वेद, वेदानुकूल शास्त्र प्रमाण, तर्क एवं युक्तियों सहित आप्तवचनों का सहारा लें।

आवश्यक सूचना

प्रिय पाठकगण! पिछले कई महीनों से ग्राहकों की शिकायत आ रही है कि उन्हें पवमान पत्रिका नहीं मिल रही है या समय पर नहीं पहुँच रही है। इस सम्बन्ध में आपको सूचित किया जाता है कि आश्रम के द्वारा पत्रिका के सभी ग्राहकों के साथ–साथ वे ग्राहक जिनका शुल्क समाप्त हो गया है, को भी लगातार पत्रिका भेजी जा रही है। आपसे अनुरोध है कि कृपया एक बार अपने नजदीकी पोस्ट ऑफिस को इस सम्बन्ध में जरुर सूचना दें। जिन सदस्यों का सदस्यता शुल्क समाप्त हो गया है, उनकी लिस्ट आगामी माह में क्रमशः पत्रिका में प्रकाशित कर दी जायेगी। आप आश्रम के टेलीफोन नम्बर पर भी अपने शुल्क की स्थिति मालूम करके आवश्यक धनराशि आश्रम के कैनरा बैंक के ''**पवमान**'' खाता, खाता संख्या–2162101021169, IFSC Code- CNRB0002162, में जमा करने का कष्ट करें। कृपया पत्रिका शुल्क जमा करने के पश्चात् आश्रम कार्यालय के टेलीफोन नं0–0135–2787001, अथवा मोबाईल नम्बर–7895978734, पर व्हाट्स–अप के माध्यम से अवश्य सूचित करने का कष्ट करें ताकि आपको रसीद भेजी जा सके। जिन पाठकों को पत्रिका रजिस्टर्ड पोस्ट से मंगानी है, उन्हें प्रतिवर्ष रू. 400/– डाक खर्च के देने होंगे। इस प्रकार आपको एक वर्ष में पत्रिका का मूल्य रू. 600/– का भुगतान करना होगा। यदि किसी कारण किसी माह आपको ''**पवमान**'' पत्रिका प्राप्त न हो तो आश्रम कार्यालय को सूचित कर दें। आपको पत्रिका पुनः भेज दी जायेगी। धन्यवाद

आत्मोत्थान का मार्ग

-प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार

ईशा वास्यमिद ँसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।1।।

बह्माण्ड में जो–जो कुछ भी यह चर–अचर, यह प्राणी–अप्राणी रूप जगत् है, यह चेतन–अचेतन रूप संसार है, उस सब में इसका स्वामी परमेश्वर सदा विराजमान रहता है। वह इसमें विद्यमान सभी प्राणियों को अपने–अपने कर्मानुसार सब प्रकार के पदार्थ प्रदान करता रहता है। मनुष्य को चाहिए कि वह उस प्रभु से जो भी कुछ अपने कर्मानुसार प्राप्त हो, उसका सन्तोष एवं त्यागपूर्वक उपभोग करें, क्योंकि किस का भला यह धन सदा रहा है? अर्थात् किसी का भी नहीं।

उपर्युक्त उपनिषद् मन्त्र पर विचार करने से मनुष्य को निम्नलिखित शिक्षायें मिलती है।

1. मनुष्य को चाहिए कि वह सदा उस प्रभु को कण–कण, क्षण–क्षण में सर्वत्र, सब समयों में व्यापक समझ कर कर्म करे अर्थात् वह यह समझकर अपने सब क्रिया–कलाप करे कि वह ईश्वर उसे सब ओर से, सब प्रकार से देख रहा है। ऐसा करने से अपने जीवन में वह पापों से, अपराधों से सदा बच जायेगा। पापों–अपराधों से बचकर फिर वह उनके आधार पर होने वाले तापों–कष्टों से भी बच जायेगा।

2. जो भी मनुष्य को कर्मानुसार उस प्यारे प्रभु की न्याय व्यवस्था के आधार पर उपलब्ध हो, उसी का ही सदा सन्तोषपूर्वक वह उपभोग करे। केवल सन्तोषपूर्वक ही नहीं वरन् त्यागपूर्वक भी वह उसका सेवन करे।

3. धन–वैभव, पुत्र – कलत्र पाकर प्रायः मनुष्य उस ईश को, इस जगत् के स्वामी परमेश्वर को त्याग देता है, भुला देता है। जबकि उसे चाहिए कि वह (तेन त्यक्तेन (ईशा सह) भुञ्जीथाः) भोगों में पड़कर उस भुलाए हुए ईश्वर के साथ उसका उपभोग करे। अर्थात् वह उसका स्मरणपूर्वक इस जगत् का उपभोग करे। इससे साधक का जीवन बड़ा ही दिव्य बन जायेगा।

4. मनुष्य को चाहिए कि वह लोभ न करे, लालच न करे। जो कुछ भी प्रभु उसे दे अपनी न्याय व्यवस्था से, वह उसी में ही सन्तोष करे। वह किसी भी अन्य मनुष्य के धन–वैभव की आकांक्षा न करे, किसी भी अन्य व्यक्ति के पुत्र–कलत्र एवं धन–वैभव को अभिलाषा भरी दृष्टि से न देखे क्योंकि इससे उसको जो कुछ भी अपने कर्मानुसार उपलब्ध है उसके आधार पर मिलने वाले सुख–चैन से भी उसे हाथ धोना पड़ जायेगा, और जिसके पुत्र–कलत्र, धन–वैभव आदि पर उसकी दृष्टि सदा गढ़ी रहती है, वह भी उसको मिलना सम्भव नहीं होगा। यदि वह इसके लिए कुछ धर्म की, विधि–विधानों की सीमाओं का अतिक्रमण करेगा तो फिर वह निरन्तर दुःख पर दुःख, कष्ट पर कष्ट भोगता ही रहेगा। अतः मनुष्य को सदा इस लोभ–लालच से ऊपर उठे रहने का प्रयास करते रहना चाहिए। हाँ, यदि वह अपनी आवश्यकता अधिक धन–वैभव की अनुभव करता है तो फिर उसके लिए उत्तम मार्ग यही है कि वह उसके लिए और अधिक पुरुषार्थ करे। ऐसा करने से प्रभु उसके

कर्मानुसार उसको और अधिक धन–वैभव देगा, जिसके परिणाम स्वरूप वह और अधिक सुख–सौभाग्यों से सम्पन्न हो सकेगा।

5. साधक सदा यह सोचे, वह सदा यह विचारे कि यह धन–वैभव वास्तव में किसका है? तो अपने भीतर ऐसा तर्क–वितर्क, ऐसा विचार–विमर्श करने पर उसको भी भली–भाँति फिर यह प्रतीत हो जायेगा कि वास्तव में यह धन–वैभव न कभी सदा किसी का रहा है, न ही कभी यह सदा किसी का रहेगा। राजा हो या रंक, सभी आये और अपनी–अपनी ढफली बजाकर इस जग से चल दिये। सभी ने ''यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है।'' यह असंख्य बार दुहराया, पर अन्त में हम क्या देखते हैं कि वे शनैः शनैः समय आने पर ऐसे सो गये कि फिर तुरई और नगाड़े बजा–बजा कर भी हम उन्हें जगा न सके। प्रभु उस समय उस स्तब्ध हुए वातावरण में कहता है कि– 'हे मानव! जरा उठ, जिस धन–वैभव को तू सदा–'यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है, कहता था, उसे अब तू सम्भाल......!' परन्तु प्रभु के विधि–विधानों में बन्धा हुआ वह मानव जब जगत् से जा रहा होता है, तो मानो वह अपनी मूक भाषा में यह कर रहा होता है कि ''नहीं–नहीं भगवन्! यह सब मेरा नहीं है, तेरा है, तेरा है, तेरा है, तेरा है, यह मुझे आज स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ''प्रभु–''तो फिर पहले साठ वर्ष तक तू इस धन–वैभव को 'यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है' इत्यादि यह लगातार क्यों कहता रहा?'' तो अपनी मूक भाषा में यह मृत मनुष्य मानों बोला कि–हे भगवन्! जब में इस जगत् में आया था, तो ये सब लोग 'यह मेरा है, यह मेरा है, यह मेरा है' इत्यादि कहते रहते थे, तो मैं भी भेड़ चाल में बिना सोचे–विचारे ही 'यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन–वैभव है, यह मेरा शरीर है' आदि–आदि सब कहता रहा। पर आज मुझे यह भाव हुआ, यह बोध हुआ कि यह सब तेरा है। इतना ही नहीं, यह सब कुछ था भी तेरा, है भी तेरा और अन्त में रहेगा भी तेरा ही। मुझे तो केवल कर्मानुसार यह सब कुछ तूने कुछ समय में उपयोग के लिये प्रदान किया हुआ था।'' तो इस प्रकार मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्मानुसार किसी विशेष अवधि तक मिले इस प्रभुप्रदत्त धन–वैभव रूप प्रसाद का श्रद्धा, प्रेम एवं भक्ति से सेवन करे। ऐसा यदि वह करेगा तो फिर उसका जीवन बड़ा ही दर्शनीय और प्रेरणाप्रद होगा।

6. मनुष्य जब उपर्युक्त मन्त्रानुसार यह सोचे–विचारे कि –'धनम् कस्य'–यह धन किसका है? तो फिर वह झट वेद के इस उत्तर को भी हृदयङ्गम करे कि–'धनं कस्य स्वित्'–यह सब धन–वैभव 'क' का ही है। अर्थात् यह सब कुछ प्रजापति परमेश्वर का ही है, आनन्दस्वरूप प्रभु का ही है। इस तथ्य को हृदयङ्गम करके जब मनुष्य अपने कर्मानुसार एक समय विशेष तक इसको प्राप्त करेगा, तो फिर इस पर वह बिना अभिमान किए हुए जहाँ वह स्वयं अपने जीवन में इसका सदुपयोग करेगा, वहाँ वह इसे उस प्रजापति परमेश्वर वा आनन्दस्वरूप परमेश्वर का ही जान कर इससे वह सब प्रजा का पालन–पोषण भी करेगा, इससे वह सब को सुख और आनन्द भी देता रहेगा। इस प्रकार साधक को चाहिए कि वह उपर्युक्त मन्त्र के भावों को हृदयङ्गम करके ही अपना जीवन व्यतीत करे, ताकि जहाँ वह इस संसार में सब के स्नेह–सम्मान और श्रद्धा का भाजन बने वहाँ वह प्रभु के अनुपम प्यार और आशीर्वाद का भी पात्र बन सके।

मोटापा व अतिकृशता

–आचार्य बालकृष्ण

मोटापा–लक्षण, निदान एवं चिकित्सा

आयुर्वेदानुसार जिन व्यक्तियों के नितम्ब, पेट और छाती में बहुत अधिक चर्बी और मांस जमा हो जाता है और ये अंग चलने पर हिलते रहते हैं अर्थात् गति करते रहते हैं तथा शरीर की वृद्धि के हिसाब से जिनमें बल एवं उत्साह नहीं होता, वे अति स्थूल या मोटे माने जाते हैं।

ऐसे व्यक्तियों के शरीर के स्रोतों में चर्बी के जमा होने से रुकावट पैदा हो जाती है। उसके कारण चलने में श्वास फूलने लगता है। शरीर में भारीपन, जल्दी घबराहट व बेचैनी रहती है। इससे वात विशेष रूप से कोष्ठ में गति करने लगता है और पाचक–अग्नि उत्तेजित हो जाती है। व्यक्ति जो कुछ भी खाता है, वह बहुत जल्दी पच जाता है और भूख बढ़ जाती है। इस तरह उसके अन्दर पाचक–अग्नि के रूप में पित्त और वात दोनों में विकार पैदा हो जाते हैं और शरीर में चर्बी बढ़ने लगती है। इससे वात के कारण से अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं।

कारण

आयुर्वेदानुसार मोटापे का प्रमुख कारण हैं– अधिक मात्रा में खाना, भारी, मीठे, ठण्डे और चिकने खाद्य–पदार्थों का सेवन, शारीरिक श्रम की कमी, दिन में सोना, बहुत अधिक प्रसन्न रहना, मानसिक शक्ति का अभाव तथा वंशानुगत (खानदानी) प्रभाव। इन सब कारणों से शरीर में दूसरी धातुओं (रस, रक्त आदि) की अपेक्षा चर्बी अधिक मात्रा बढ़ती है। चर्बी के ढीलेपन, भारीपन और कोमलता के कारण उसकी गति और कार्य करने की क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शुक्र की मात्रा कम होने से तथा शुक्रवह स्रोतों में चर्बी के कारण रुकावट होने से मैथुन क्रिया में परेशानी होती है। मोटे लोगों की कार्य क्षमता धीमी हो जाती है। चर्बी के साथ कफ मिला होता है तथा चर्बी तरल और भारी होती है। धातु सन्तुलन बिगड़ जाता है। अतः मोटा शरीर होने पर भी दुर्बलता आ जाती है।

अतिस्थूलता के लिए चिकित्सा

आयुर्वेद के अनुसार स्थूलता अथवा मोटापे को दूर करने के लिए लंघन अथवा अपतर्पण चिकित्सा की जानी चाहिए। लंघन चिकित्सा वह चिकित्सा है, जो शरीर में लघुता (हल्कापन) लाती है तथा जिससे शरीर में चर्बी की कमी होने से वजन कम होता है। इस चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली औषधियों, आहार और साधनों में तेजस् (अग्नि), वात और आकाश महाभूत की प्रधानता होती है।

इस आधार पर लंघन के लिए लघु, उष्ण, चिपचिपाहट से रहित शुष्क (सूखे), रूक्ष (रूखे), सूक्ष्म, तरल तथा कठोर औषधि–द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार की चिकित्सा के लिए निम्नलिखित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है–

(1) संशोधन चिकित्सा–वमन (उल्टी), विरेचन (दस्त), बस्ति (एनिमा), नस्य (नाक में औषधि–निक्षेपण) द्वारा शरीर में जमा दोषों, मलों को बाहर निकालना। (2) रात्रि में जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठना। (3) कम मात्रा में और हल्का

भोजन करना व समय पर भोजन करना। (4) प्यास पर नियन्त्रण करना। प्यास लगने पर गर्म पानी पीना। (5) हवा और धूप का सेवन व प्रातः सायंकाल भ्रमण करना। (6) शारीरिक व्यायाम, योगासन, प्राणायाम आदि प्रतिदिन करना। (7) पाचक औषधियों का सेवन करना।

लंघन चिकित्सा के अतिरिक्त, निम्न प्रकार की चिकित्सा का प्रयोग भी स्थूलता को दूर करने के लिए किया जाना चाहिए।

(1) रूक्ष तथा गर्म द्रव्यों का सेवन। (2) तक्र (छाछ) का सेवन। (3) तक्र के साथ जौ की रोटी व लौकी आदि के सुपच शाक का सेवन। (4) सुखोष्ण (गुनगुने) जल में प्रातः सायं एक–एक चम्मच शहद डालकर सेवन करना। (5) वातगुणयुक्त भोज्य पदार्थ व हरी सब्जियों तथा फलों का सेवन करना। (6) गिलोय, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा तथा आँवला का क्वाथ बनाकर 50–100 मिली मात्रा में प्रातः सायं सेवन करना। (7) गेहूं, चावल, बाजरा तथा साबुत मूंग को 500–500 ग्राम लेकर धीमी आंच पर सेंककर दलिया बना लें। इसमें अजवायन 20 ग्राम तथा सफेद तिल 50 ग्राम मिला लें। 50 ग्राम दलिया को 400 मिली पानी में डालकर नियमित रूप से सेवन करने से मोटापे में लाभ होता है। (8) प्रतिदिन प्रातः सायं एक–एक अश्वगंधा के पत्ते को हाथ से मसलकर गोली बनाकर भोजन से एक घण्टा पहले या खाली पेट गर्म जल के साथ सेवन करें। यह प्रयोग सात दिन करें, तदनन्तर 15 दिन के अन्तराल से पुनः सात दिन तक सेवन कर सकते हैं। (9) नियमित तथा संयमित दिनचर्या का पालन। (10) एक चम्मच त्रिफला चूर्ण (हरीतकी, बहेड़ा, आंवला) को 200 मिली पानी में भिगोकर रख दें। प्रातःकाल गर्म करके आधा रहने पर छानकर पियें।

इन सभी साधनों से मोटापा दूर होता है। मोटापे के अतिरिक्त उसी प्रकार के दूसरे रोग जैसे– हृदय रोग, क्षय, खाँसी, श्वेत कुष्ठ, मधुमेह, आम रोग आदि भी इनसे दूर होते हैं। आधुनिक युग में अधिक भौतिक सुविधाओं के कारण तथा शारीरिक कार्यों के अभाव के कारण स्थूलता (मोटापा) का रोग बढ़ता जा रहा है तथा इससे होने वाले रोगों की भी अधिकता हो रही है। उपरोक्त उपायों से मोटापा रोकने में सहायता मिल

सकती है।

अतिकृशता लक्षण, निदान एवं चिकित्सा

अत्यधिक पतले (दुर्बल) व्यक्ति के शरीर में नितम्ब, पेट और गर्दन एकदम सूखे हुए (पतले) होते हैं। उसकी त्वचा पर धमनियों का जाल सा बिछा दिखाई देता है। उसकी हड्डियों के जोड़ सर्वदा स्पष्ट नजर आते हैं। ऐसा व्यक्ति हड्डियों और चमड़ी का ढाँचा प्रतीत होता है।

बहुत पतले व्यक्ति में इतनी शक्ति नहीं होती कि अधिक शारीरिक श्रम, अधिक मात्रा में भोजन, भूख, प्यास, रोग, कष्ट और औषधियों के प्रभाव को सहन कर सके। वह अधिक सर्दी या अधिक गर्मी को सहन नहीं कर सकता और न ही समुचित सम्भोग कर सकता है। इस प्रकार के दुर्बल व्यक्ति अधिकतर तिल्ली, खाँसी, साँस फूलना, गुल्म, बवासीर तथा पेट, छाती व आँत के रोगों से पीड़ित रहते हैं।

अतिकृशता के कारण

अधिक पतलेपन के मुख्य कारण हैं– रूखा खान–पान, उपवास, कम मात्रा में खाना, शोक, चिन्ता, क्रोध करना, स्वाभाविक बंगों को रोकना,

कम सोना, अधिक स्नान करना, वमन, विरेचन आदि संशोधन चिकित्सा की अधिकता, रूक्ष द्रव्यों से उबटन, बुढ़ापा, वंशगत प्रभाव और अधिकतर रोग ग्रस्त रहना।

अतिकृशता अथवा दुबलेपन की चिकित्सा

अत्यधिक दुबलेपन को दूर करने लिए बृंहण या सन्तपर्ण चिकित्सा व साधनों को प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा से शरीर का पोषण और बल की वृद्धि होती है। तथा शरीर में भारीपन आता है। पृथ्वी और जल महाभूतों की अधिकता वाले द्रव्य, भोजन एवं साधनों का प्रयोग इसमें किया जाता है। इस आधार पर भारी, शीतल, कोमल, मन्द, चिपचिपे, स्थूल व घने पदार्थ इस दृष्टि से उपयोगी हैं। दूध, घी, पनीर, मक्खन व शहद का सेवन, स्नान, स्निग्ध पदार्थों का उबटन, अधिक नींद, स्निग्ध औषधियों से एनिमा व चिन्ताओं से दूर रहना तथा प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करना से सब बृंहण चिकित्सा में आते हैं। इनके प्रयोग से शरीर का दुबलापन नष्ट होता है।

(1) अच्छी नींद, प्रसन्नता, आरामदायक बिस्तर, सन्तोष और मन की निश्चिन्तता। (2) चिन्ता, सम्भोग और शारीरिक श्रम से बच कर रहना यानी इनकी अति न करना। (3) अच्छे लगने वाले दृश्यों और सम्बन्धियों का दर्शन, मिलना व उनसे वार्ता करना। (4) दही, घी, दूध, गन्ना, शालि चावल, उड़द, गेहूँ एवं गुड़ से बने पदार्थों का सेवन। (5) नियमित रूप से तेल की मालिश, स्निग्ध द्रव्यों का उबटन और गर्म जल से स्नान। (6) सौम्य व कोमल वस्त्रों को धारण करना। प्राकृतिक सुगन्धित द्रव्यों (इत्रों) और मालाओं का प्रयोग। (7) रसायन चिकित्सा एवं वृष्य (शुक्र बढ़ाने वाली) औषधियों का सेवन। (8) सब प्रकार की चिन्ता से मुक्त रहना और उचित समय पर पौष्टिक पदार्थों का सेवन करना। (9) नियमित आसन एवं प्राणायाम करना। प्रातः भ्रमण द्वारा शुद्ध वायु का सेवन करना। (10) लघु तथा शीघ्र पचने वाले अन्न का सेवन तथा शीतल तथा मिश्री युक्त दुग्ध में एक चम्मच शहद डालकर नित्य प्रातः तथा सायं सेवन करना। (11) सोयाबीन, गेहूँ, जौ, चना आदि प्रोटीन युक्त पदार्थों को मिलाकर दलिया लेना चाहिए या संतुलित आहार का सेवन करना चाहिए।

इन सब उपायों से अधिक कृशता एवं उससे होने वाले रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। संक्षेप में चिन्ता न करने, प्रसन्न रहने, अधिक नींद लेने और नित्य बृंहण गुण वाले आहार व औषधि के सेवन से अतिकृशता को दूर किया जा सकता है।

अतिकृशता की अपेक्षा अतिस्थूलता अधिक हानिकर

जैसा कि उल्लेख किया गया है– अधिक मोटापा व अधिक दुबलापन, दोनों ही अवस्थाएँ हानिकारक हैं। क्योंकि दोनों प्रकार के व्यक्ति किसी न किसी रोग से पीड़ित रहते हैं और दोनों को ही उपचार की समान रूप से आवश्यकता होती है, परन्तु इन दोनों में मोटापे की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक बुरी होती है। अतः रोग होने पर मोटे व्यक्ति को अधिक कष्ट होता है तथा मोटे व्यक्ति की चिकित्सा भी पतले की अपेक्षा अधिक कठिन होती है क्योंकि ऐसे व्यक्ति के लिए इस प्रकार की चिकित्सा होनी चाहिए, जो बढ़ी हुई चर्बी, पाचक–अग्नि और वात को कम करे। यदि इसके लिए बृंहण प्रकार की चिकित्सा करते हैं तो पाचक–अग्नि और वात तो शान्त होते हैं, परन्तु चर्बी बढ़ जाती है। यदि लंघन (दुर्बल) चिकित्सा करते हैं तो चर्बी तो घटती है, परन्तु पाचक–अग्नि और वात की वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में–बृहंण चिकित्सा करने से व्यक्ति में मोटापा और अधिक बढ़ता है और लंघन चिकित्सा करने पर पाचन–शक्ति तेज होने के कारण वह उसको सहन नहीं कर पाता है, अतः कृशता की अपेक्षा मोटापे की चिकित्सा करना कठिन व जटिल कार्य है।

आरोग्य–चिन्तन–प्रेरक–निर्देश

–राधाकृष्णजी सहारिया

(१) स्वास्थ्य का नियम न जानने से व्यक्ति बार–बार रोगों का शिकार होता रहता है। जो प्रकृति के नियमों की अवहेलना करता है वह कुदरत का अपराधी है इसीलिये उसे बीमारी रूपी सजा बार–बार भोगनी पड़ती है।

(२) केवल दवा और अस्पतालों से रोगों का समूल नाश नहीं होता। रोगों का समूल नाश तो इन्द्रिय–संयम और मन की शुद्धि होने पर होता है।

(३) भोजन की विकृति स्वादिष्ठता का प्रलोभन इतना अहितकर है कि उसका दुष्परिणाम स्वास्थ्य–नाश की भारी कीमत चुकाने के रूप में भुगतना पड़ता है।

(४) रोग और बुढ़ापा आदि कोई अलग से नहीं होते। उनका सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध हमारी जीवन–पद्धति से होता है।

(५) महत्त्व भोजन का नहीं, पाचनशक्ति का है।

(६) रोग का सम्बन्ध केवल शरीर से न होकर, कभी–कभी मन की तरंगों से भी होता है।

(७) शरीर को स्वस्थ रखनेके लिये दवाइयों का सहारा लेने की उतनी जरूरत नहीं है जितनी शरीर के अंग–प्रत्यंगों को मजबूत और स्वस्थ रखने की जरूरत होती है।

(८) संसार में अनेक दवाएँ हैं, किंतु प्रार्थना रूपी महौषध से त्रिताप का सहज ही निवारण होता आया है।

(९) केवल आपातकाल में औषध का सहारा लें।

(१०) एक साधारण रोगी की अपेक्षा भयग्रस्त रोगी असाध्य होता है। भय एवं चिन्ता करने से रक्त का शुद्ध रहना असम्भव हो जाता है। मस्तिष्क को शुद्ध रक्त अवश्य प्राप्त होना चाहिये। विचारों का प्रभाव केवल मस्तिष्क पर ही नहीं होता बल्कि शरीर के प्रत्येक अंग पर होता है। अतः परमेश्वर का आश्रय लेकर निर्भय रहना चाहिये।

(११) रोगी अपनी इच्छा–शक्ति के बल पर अपने को निर्देशन देता रहे कि उसे कोई रोग नहीं है, वह ठीक है, बिलकुल स्वस्थ है तो हृदय में प्रवाहित होने वाली अपनी आस्था एवं विश्वासरूपी लहरों से आत्मशक्ति उसे प्राप्त होती रहेगी और धीरे–धीरे उसके स्वास्थ्य में सुधार होता जायेगा।

(१२) जीवन का स्वास्थ्य केवल भौतिक तत्त्वों पर ही निर्भर नहीं है, हमारे विचार और क्रियाओं से जीवन संचालित होता है। विचारों और क्रियाओं में दोष हैं तो मन और शरीर दोनों रुग्ण हो जाते हैं। जब तक उनमें निर्मलता नहीं आती तब तक औषधि काम नहीं करेगी।

(१३) लौकिक चिकित्सा और आध्यात्मिक चिकित्सा द्वारा रोग–निवारण की साधना में मौलिक अन्तर यह है कि लौकिक चिकित्सा का आधार स्थूल भौतिक पदार्थ हैं, जबकि आध्यात्मिक चिकित्सा के आश्रय परमपिता परमेश्वर हैं जो लौकिक साधनों के भी परमाधार हैं। अतः उनकी कृपा का अवलम्बन लेना चाहिये।

अधर्म जनपद के विनाश का हेतु

–स्वामी वेदानन्द सरस्वती, उत्तरकाशी

चरक के विमानस्थान में भगवान आत्रेय अपने शिष्य अग्निवेश के प्रति उपदेश करते हुए बोले–

"हे प्रिय शिष्य! नक्षत्र, ग्रह, सूर्य, वायु, अग्नि और दिशाओं के विभिन्न योग से ऋतुओं में विकार पैदा होते हैं। ऋतुओं के विकार से पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली औषधियां भी विकृत हो जाती है। औषधियों के विकृत हो जाने से उनके रस और प्रभाव भी नष्ट हो जाते हैं। उनके नष्ट होने से प्रजा में असाध्य रोगों का जन्म होता है। जो जनपद के, विनाश का कारण बनते हैं।

इस पर अभिवेश ने पुनः प्रश्न किया कि गुरुदेव! सभी मनुष्यों की प्रकृति एक समान नहीं होती। सब के देह का बल, आहार सात्म्य और अवस्था में भेद होने पर भी किसी देश विशेष में महामारी के प्रकोप से जन सामान्य का एक साथ विनाश क्यों देखने को आता है?

भगवान आत्रेय ने उत्तर दिया–हे अग्निवेश! हर व्यक्ति की शारीरिक अवस्था प्रकृति, आहार सात्म्य, देह का बल, भिन्न–भिन्न होने पर भी चार बातें एक समान ही होती हैं। वे चार हैं– वायु, जल, देश और काल। जब ये चारों विकृत हो जाते हैं, तो वह जनपद के विनाश का कारण बनता है

1. दूषित वायु के लक्षण होते हैं–जो ऋतु के विपरीत प्रकृति की हो, बहुत व्रीव या एकदम शान्त, बहुत गर्म, बहुत शीतल, रूखी, भयंकर तूफान, वात–चक्र, दुर्गन्धयुक्त, धूल, धुवें से भरी हुई कार्बन आदि दूषित वायु, कल कारखानों की तथा पैट्रोल से दूषित वायु प्राणघातक होती हैं।
2. दूषित जल के लक्षण होते हैं– बहुत दूषित गन्ध, वर्ण, रस, स्पर्श वाला चिपचिपा, कीट पतंग से युक्त, गन्दगी से युक्त, गले सड़े पदार्थों तथा मुर्दों से युक्त जल भी घातक होता है ।
3. रोग कारक देश–सदा सैलाब से युक्त, दुर्गन्धयुक्त, सांप, शेर, चीतादि हिंसक पशु तथा मक्खी, मच्छर, डांस, पतंग, चूहें, उल्लू, गीध, चील, गीदड़ आदि जन्तु जहां अधिक रहते हैं। जहाँ कुत्ते, गीदड़ आदि पशु ऊँची आवाज से रोते चिल्लाते हैं। जहां धर्मभ्रष्ट लोगों का आवास हो, जहाँ उल्कापात हो बिजली गिरती हो, भूकंप आदि आते हो। जहां, चोर, धूर्त, आतंकवादियों का बोलबाला हो वह देश भी मौत को ही आमन्त्रित करता है।
4. रोग कारक काल के लक्षण–जिस काल में ऋतुओं के विपरीत लक्षण घटित होते हैं, जब गर्मी में गर्मी न हो, वर्षा ऋतु में वर्षा न हो या अतिवर्षा हो। शीत काल में ठण्डा न होकर गर्म मौसम हो, वर्षा जैसी ऋतु हो जाये, ऋतुओं के अनुसार मौसम न होकर उसका अतिरेक होना, बहुत अधिक या अति–न्यून होना यह रोगकारक काल के लक्षण है।

इन चारों में भी कौन अधिक, गरीय है– यह आगे बतलाते हैं।–

वाताज्जलं, जलादेश, देशात्कालं स्वभावतः।
विद्यात् दुश्परिहार्यत्वात् गरीयस्तरमर्थवित्।।

अर्थात्–यथार्थ को जानने वाले वैद्य को, वायु से जल को, जल से देश को, देश से काल को स्वभावतः अधिक गुरुतर जानना चाहिये। क्योंकि इनके दोषों को दूर करना उत्तरोत्तर अधिक कठिन होता है। जैसे–वायु के दोष से बचने के लिए व्यक्ति शुद्ध वायु के पर्वतादि स्थान पर चला जाता है, किन्तु सर्वत्र शुद्ध जल की उपलब्धि भी सुलभ नहीं होती। यदि जल को भी छोड़ दें तो देश का छोड़ना सरल नहीं होता। यदि देश को छोड़ कर देशान्तरं में चले जायें तो भी काल की सीमा से परे जाना दुश्तर है।

इसलिये इन चारों की उत्तरोत्तर गुरुता है।

मानव जीवन की रक्षा के उपायों को कहते हैं, वे भी सुनों–

सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः।।
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्।।
संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षिणां जितात्मानाम्।
धार्मिकैः सात्विकैर्नित्यं सहास्या वृहसंमतैः।।
इत्येतद्वेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।।

अर्थात्–सत्य का पालन, भूतों (प्राणियों) पर दया, दान करना, प्राणियों के लिये अन्न क्षेत्र चलाना देव पूजा, सद्वृत्तों का पालन करना, विषय भोग से मन को बचाकर रखना, आत्मरक्षा, जनपदों की सेवा करना, कल्याणकारी कार्मों का सेवन, ब्रह्मचर्य का पालन करना, दूसरे ब्रह्मचारियों की भी सेवा करना, धर्मशास्त्रों की कथा का श्रवण–मनन, ऋषि महर्षि, जितेन्द्रिय, धार्मिक वृद्ध, सात्विक पुरुषों का संग करना, उन से ज्ञान श्रवण करना ये सब उपाय जीवन की रक्षा करने वाले होते हैं। ये सब धर्म कृत्य हैं।

अग्निवेश ने पुनः आत्रेय मुनि से पूछा कि भगवान! वायु, जल, देश और काल की विकृति जो जनपद के विनाश का कारण होती है, इनकी विकृति का हेतु क्या है?

भगवान् आत्रेय ने उत्तर दिया–

वायवादीनां यद्वैगुण्यमुत्पद्यते तस्य
मूलकारणामधर्मः, तन्मूलं वा पूर्वकृतमसत्कर्मः।

अर्थात्–वायुजलादि में जनपद को विनष्ट कर देने वाले दोष उत्पन्न होते हैं, उनका मूल कारण अधर्म है अथवा पूर्वकृत पाप कर्म है। अधर्म और असत् कर्म का मूल मनुष्य की बुद्धि का अपराध होता है। जब देश, प्रान्त ग्राम, जनपद, नगर के प्रधान पुरुष अधर्म युक्त कर्म करते हैं तो उनके आश्रित सामान्य जन भी अधर्म का आचरण करने लगते हैं। इस प्रकार अधर्म से पाप बढ़ता चला जाता है, और धर्म का लोप हो जाता है। जब देश, प्रान्त जनपद के प्रधान पुरुष ही पाप में डूब जाते हैं तो वहां से देवता भी उठ जाते हैं। ऋतुयें भी विकृत हो जाती है। ऋतुओं के अनुसार मेघ भी समय पर वर्षा नहीं करते, अकाल पड़ जाता है या अतिवृष्टि होती है। जल भी विकृत हो जाता है। वायु दूषित हो जाती है। जल, वायु के दूषित होने से भूमि पर उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ अन्न फल, शाकादि सब दूषित हो जाते हैं। उन औषधियों, अन्न, फलादि के प्रयोग से पूरे जनपद असाध्य रोगों से पीडित होकर उजड़ने लगते हैं।

युद्धों से उत्पन्न होने वाले विनाश का कारण भी अधर्म ही होता है। व्यक्ति के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जब इतने बढ़ जाते हैं कि वे दुर्बलों को कुचलकर अपने और पराये लोगों का नाश करने के लिये दूसरों पर आक्रमण कर देते हैं। हजारों, लाखों की संख्या में हत्या कर देना भी उन अधर्मियों को पाप नजर नहीं आता। अन्ततः वह बढ़ता हुआ पाप उन अधर्मियों को भी ले डूबता है। जिस समाज में विद्या, वयोवृद्ध, गुरुजनों, सिद्धपुरुषों, ऋषि मुनियों को अपमानित करके उनको पीड़ित किया जाता है, तो उन पूजनीय पुरुषों के अभिशाप से उन जनपदों के कुल ही नष्ट हो जाते हैं। दुष्ट, आततायी भी समाज या देश में तभी सिर उठाते हैं, जब वहाँ अधर्म का बोलबाला होता है और धर्म का लोप हो जाता है।

सारांश यह है कि मानव समाज की रक्षा का प्रबलतम हेतु धर्म ही होता है। सत्व प्रधान बुद्धि से जब मनुष्य धर्म का आचरण करता है तो वह सदैव स्वस्थ जीवन जीते हुए दीर्घ जीवन को प्राप्त करता है। उससे अपने इस लोक और परलोक को सफल बना लेता है। इसलिये सभी मनुष्यों को सदा धर्म का ही आचरण करना चाहिये। इसी में सब का हित है। धर्म का मूल वेद है। वेद को भुलाकर धर्म, धर्माडम्बर का रूप ले लेता है। धर्माडम्बर से पापों का ही जन्म होता है, जो जनपद के लिये घातक बनता है। इसलिये धर्म ज्ञान के लिये वेदों की शरण में जाना चाहिए।

आनन्द

–वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

कर्म में त्याग, भक्ति में ग्रहण, वास्तविक आनन्द प्राप्ति, ज्ञान में उपेक्षावृत्ति। तीन प्रकार से आनन्द की प्राप्ति होती। एक तो ग्रहण से, दूसरे त्याग से, तीसरे उपेक्षा वृत्ति से।

जो पदार्थों के ग्रहण से आनन्द होता है, वह वास्तविक आनन्द नहीं, या उसे आनन्द का नाम देना भूल है। वह एक स्वाद है। जैसे उत्तम भोजन के खाने से मनुष्य आनन्द मानता है, पर वह स्वाद है, क्योंकि परिणाम उसका दुर्गन्ध है। रूप में आनन्द मानता है, पर वह भी आनंद नहीं, उसका परिणाम भी मनुष्य आसक्ति और अपयश है। ऐसे ही गंध आदि। ये पदार्थ ग्रहण करने से रुप मोह को, रस लोभ को, गंध काम को, स्पर्श अहंकार को, शब्द तीव्रता(क्रोध) को उत्पन्न करने का कारण बन जाते हैं। इसलिए यह(ग्रहण) आनंद नहीं कहलाता है।

दूसरा आनंद त्याग से उत्पन्न होता है। उसमें वास्तविक आनंद तो नही, पर आनंद की अनुकृति अवश्य है–कुछ मस्ती–सी है। विषय नशा आदि के त्याग से मस्ती आती है। मनुष्य की प्रशंसा और सुगंध फैलती है।

गृहस्थ के समागम में आनंद आता है। जब पुरुष वीर्य का दान करता है–त्याग करता है। यह आनंद की एक छाया है और इसी में वास्तविक रहस्य है। जब पुरुष का स्त्री(धर्मपत्नी) से युग होता है और फिर युग में भेद–भाव, संसार की सब विपत्तियां, पर्वत समान आपत्तियां और रोग–उस क्षण में युग्म होने में स्वतः ही कपूरवत् उड़ जाती हैं और इतनी तन्मयता होती है कि उसके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं। दोनों स्त्री–पुरुष आनंद मान रहे हैं।

जीवात्मा का जब, जिस क्षण बुद्धि रूपी धर्मपत्नी से युग हो जाता है, संसार की किसी भी वस्तु की सुधि तो क्या, अपने ही शरीर की सुधि नहीं रहती और इस युग्म में (योग समाधि में) दोनों के ममत्व का त्याग हो जाता है। तब वास्तविक आनन्द आता है। जिस ग्रहण में त्याग हो, और जिस त्याग में कोई ग्रहण हो रहा हो–वही वास्तविक आनन्द है। जिसमें केवल एक ही तत्व होगा वह आनन्द कहलाएगा।

स्त्री–पुरुष के युग्म और त्याग में एक लाल की उत्पत्ति होती है, जो उस प्रेम का फोटो होता है और उसी से ही स्त्री–पुरुष चिरकाल तक प्रेम करते रहते हैं। उस युग्म और त्याग से प्रेम की उत्पत्ति होती है।

आत्मा और बुद्धि के मिलाप और त्याग से भी परमानन्द प्रेम की उत्पत्ति होती है।

तीसरा आनन्द है–ज्ञान में। ग्रहण और त्याग दोनों ही उपेक्षावृत्ति। न ग्रहण से राग, न त्याग से द्वेष, न ग्रहण से द्वेष, न त्याग से राग, वैराग्य अवस्था। केवल कर्म में त्याग होता है, केवल भक्ति में ग्रहण, केवल ज्ञान में न ग्रहण और न त्याग होता है। वह कर्म नहीं, जिसमें त्याग न हो। जिन कामों में ग्रहण होता है वे कर्म नहीं होते। वह भक्ति, भक्ति नहीं, जिसमें ग्रहण न हो। जिस भक्ति में भगवान् के गुणों का ग्रहण नहीं वह भक्ति नहीं कहला सकती। वाह–भगवान! वाह भगवान्! मेरा भी सौभाग्य कि मैं इस दृश्य को भक्त बन कर न सही, दर्शक बनकर देख तो रहा हूँ। कभी तो इस दर्शक का(द) उड़कर मेरे भाग में भी रश्क(स्पर्धा) आ जावेगा–और तू मेरा वैसा ही भगवान् कहलाएगा।

काम की बात

मुँह की बदबू

मुँह की बदबू दूर करने के लिए अनार का छिलका सुखाकर–पीसकर चूर्ण बना लें और सुबह–शाम एक–एक ग्राम की मात्रा में पानी से लें। मुँह की बदबू दूर हो जायेगी। यह योग दो सप्ताह अवश्य करें।

बहरापन

मूली रेतकर उसका पानी निचोड़ लें और उसके बराबर तिल का तेल मिलाकर मंद आँच पर पकायें। जब पानी जल जाये तो उतार कर छान लें। सुबह–शाम दो–दो बूँद गरम कर कान में टपकायें। बहरेपन में लाभ मिलेगा। यह योग बारह सप्ताह तक करना अनिवार्य है।

दाद

शीशम की गीली लकड़ी को आग पर जलायें तो उसके कटे वाले सिर से झाग निकलेगा। वह झाग दाद पर तीन सप्ताह तक करने से दाद दूर हो जाता है। पुराने दाद के लिये योग छः सप्ताह तक करना जरूरी है।

रक्तप्रदर

अशोक की छाल बीस ग्राम गाय के दूध में पकाकर मिश्री मिलाकर सुबह–शाम लें। यह योग बारह सप्ताह तक अवश्य करें। रक्त प्रदर ठीक हो जायेगा।

आयुर्वेदिक शब्दावली

त्रिफला : हरड़, बहेड़ा, आँवला की समान मात्रा को ''त्रिफला'' कहते हैं।

त्रिकुट : सोंठ, कालीमिर्च, पीपल की समान मात्रा को ''त्रिकुट'' कहते हैं।

त्रिमुद : वायविडंग, नागरमोथा, चित्र की समान मात्रा को ''त्रिमदक'' हते हैं।

त्रिजात : दालचीनी, तेजपात एवं इलाइची की समान मात्रा को ''त्रिजात'' कहते हैं।

त्रिलवण : सेंधानमक, कालानमक और विडनमक की समान मात्रा को ''त्रिलवण'' कहते हैं।

महर्षि दयानंद से वार्तालाप

- वेदाचार्य डॉ. रघुवीर वेदालंकार

प्रातःकाल के ४ बजे थे कि अचानक ही एक कौपीन धारी तेजोमूर्ति को सामने खड़े देखकर हतप्रभ रह गया। आँखें मसलकर देखा तो पाया कि महर्षि दयानंद हाथ में मोटा सोटा लिए खड़े हैं। डर तो लगा कि सोटे को पीठ की ओर न बढ़ा दें, तथापि चरण–स्पर्श करके पूछ ही लिया 'महर्षि आप' कहाँ से? दयानंद–सम्भवामि युगे युगे। मैं–भगवन्! किसलिए कष्ट किया? दयानंद–आर्यसमाज अमर रहे। वेद की ज्योति जलती रहे का तुमुल नाद मुझे सुनायी पड़ रहा था। सोचा, चलकर स्वयं इस दृश्य को देख तो आऊँ। अब तुम्हीं बताओ, आर्यसमाज की क्या दशा है। मैं–भगवन्! आर्यसमाज खूब फैल रहा है। जगह–जगह आर्यसमाज खुल रहे हैं। दिल्ली में ही २०० से भी अधिक आर्यसमाजें हैं।

दयानंद–फिर तो सत्संगों में बहुत उपस्थिति होती होगी। मैं–हाँ, महाराज। लगभग ६० वर्ष के १०–१२ सज्जन तो वहाँ अवश्य ही मिल जाते हैं, जिनके सिर के बाल, वस्त्र तथा वहाँ बिछी हुई चादरें, ये तीनों ही सफेद ही सफेद दिखलायी देते हैं। कभी–कभी तो मंत्री, प्रधान, पुरोहित, कोषाध्यक्ष ये चार व्यक्ति ही हवन पर बैठने वाले मिलते हैं। बच्चों तथा युवावर्ग के लिए तो आर्यसमाज मानो अस्पृश्य ही है।

दयानंद–ऐसा क्यों? मैं–ऐसा इसलिए कि रिटायर होने के बाद ये समाज सेवक मंत्री/प्रधान आदि पदों पर इतनी दृढ़ता के साथ जम जाते हैं जैसे कि अंगद का पैर। ये भला युवकों को क्यों आने देंगे? मैं उपदेशक हूँ तथा अनेक समाजों में मैंने युवावर्ग से ऐसी शिकायतें सुनी हैं। एक संरक्षक पद भी गढ़ा गया है, जिससे कि प्रधान भूत होने पर आजीवन संरक्षक कहला सके। आपको भी संरक्षक पद देना चाहते थे, जिसे आपने यह कहकर अस्वीकार कर दिया था कि मेरा नाम सामान्य सदस्यों में ही लिखा जाए।

दयानंद–ये आर्यसमाजी चन्दा कितना देते हैं। अब तो महंगाई का युग है। पर्याप्त आय होती होगी।

मैं–हाँ, भगवन् ! समाजों की आय पर्याप्त है किन्तु वह चन्दे से नहीं अपितु भवनों के किराये से है। स्थायी किरायेदार हैं तथा शादियों, पार्टियों के लिए भी सत्संग–भवन किराये पर दे दिया जाता है, जिनमें पार्टी स्तर के सब काम होते हैं। सदस्यता शुल्क तो २, ५ तथा १० रुपये मासिक ही दिया जाता है। आपने शतांश का नियम व्यर्थ ही बनाया। इससे आर्यबन्धुओं को सदस्यता में ही झूठ बोलना पड़ता है।

दयानंद–मुझे गुरुदत्त मिला था। कह रहा था कि मैंने १६ बार सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा है। ये लोग तो बीसियों बार पढ़ते होंगे। मैं–महाराज, ऐसे तो बहुत लोग मिल जाएँगे, जिन्होंने २० पृष्ठ भी सत्यार्थ के नहीं पढ़े। बीसियों बार की बात तो आप इनसे ही पूछ लीजिए ।

दयानंद–और वेद का पठन–पाठन तो प्रत्येक आर्य करता होगा, क्योंकि यह परम धर्म है।

मैं–भगवन! यह नियम साप्ताहिक सत्संग में दोहराने के लिए है। आप घरों में जाकर स्वयं देख लीजिए कि किन के घरों में चारों वेद हैं, पढ़ना तो दूर की बात रही।

दयानंद–अच्छा, सभाओं की क्या स्थिति है ?

मैं–बहुत अच्छी। खूब फल–फूल रही हैं। एक ही प्रान्त में एक ही नहीं, २–२, ३–३ सभाएँ बन रही हैं। आपने कहा था गोत्र हत्यारे दुष्ट दुर्योधन के रास्ते पर आर्यावर्त चल रहा है। यह परस्पर की फूट आर्यों का पीछा छोड़ेगी या नहीं। पीछा छोड़ भी देती किन्तु आर्यसमाज के स्वनाम धन्य स्वामी आनन्दबोध जी २–२ सभाएँ तथा समाज बनवाकर ऐसी चोटली डाल गये हैं कि ये आर्य परस्पर लड़ते ही रहेंगे।

दयानंद–अच्छा, २–२ सभाएँ तथा समाज काम तो खूब कर रहे होंगे?

मैं–हाँ महाराज, खूब कर रहे हैं। वार्षिकोत्सव तथा बड़े–बड़े सम्मेलन करते हैं. बड़ा ही सरल रास्ता है

कि जिसे भी नेता बनना हो वह २–४ बड़े–बड़े सम्मेलन करके अपनी शक्ति का परिचय दे दे।

दयानंद–आर्यसमाजों तथा आर्यों के सामाजिक कार्य क्या–क्या हैं?

मैं–दैनिक तथा साप्ताहिक सत्संग करते हैं, वेदकथा करते हैं, वार्षिकोत्सव करते हैं। अनेक समाजों में स्कूल, सिलाई केन्द्र, औषधालय भी चलाते हैं।

दयानंद–तब तो बहुत जनता आर्य बन चुकी होगी?

मैं–आपके पास अपने समय का हिसाब–किताब हो तो मिलान कर लीजिए कि तब से संख्या घटी ही होगी, बढ़ी नहीं है।

दयानंद–ऐसा क्यों? १२५ वर्षों में भी ऐसा क्यों?

मैं–ऐसा इसलिए कि कुछ अपवादों को छोड़कर आर्यों की सन्तति न तो आर्यसमाजों में जाती है तथा न ही आर्य बनती है। दूसरे व्यक्ति बनें ही क्यों? क्योंकि उन्हें फँसाने के लिए अनेक धर्मगुरु मैदान में उतर आये हैं। वहाँ उपस्थिति भी लाखों में होती है जबकि आज आर्यसमाज के बड़े से बड़े सम्मेलन में भी लाखों की उपस्थिति नहीं होती।

दयानंद–यह पाखण्ड क्यों बढ़ रहा है। मेरी पाखण्ड खण्डनी का आर्यों ने क्या किया?

मैं–महाराज, इसे मोहन आश्रम, हरिद्वार में स्थापित कर दिया गया है, क्योंकि खण्डन से लोग नाराज होते थे। आपसे भी नाराज होते थे। गालियाँ देते थे, पत्थर मारते थे। अब गालियाँ तथा पत्थर कौन खाये? आपके शिष्य श्रद्धानंन्द, लेखराम, राजपाल गोलियाँ तथा छुरे खा गये। तब से आर्य थर्रा गये कि कहीं हमारा भी यही हाल न हो जाए। परिणामस्वरूप ऐसे मेंढ़क भी अब जोर से टर्टराने लगे हैं कि जिनकी आपके समय में कोई आवाज ही न थी। हंसामत, ब्रह्मकुमारी, राधा स्वामी आदि का ही प्रचार–प्रसार आप देखेंगे तो हतप्रभ रह जाएँगे। कई आचार्यों तथा बापुओं के ताम–झाम तो इनसे पृथक् हैं।

दयानंद–पुरोहित वर्ग क्या कर रहा है?

मैं–वह खूब दक्षिणा कमा रहा है, संस्कार करा रहा है। उसने प्रचार का ठेका नहीं लिया है।

दयानंद–उपदेशक वर्ग क्या कर रहा है?

मैं–आर्यसमाज का उपदेशक युग समाप्त हो चुका है। आज सभाओं के पास उपदेशक ही नहीं हैं। सभाओं का ध्येय प्रचार कराना रह भी नहीं गया है। उनका ध्येय सभाओं तथा गुरुकुलों पर कब्जे करना, वहाँ की सम्पत्ति को बेचना, यात्रा के बड़े–बड़े झूठे बिल बनाना, एक ही व्यक्ति का कई–कई पदों पर प्रतिष्ठित होना ही एकमात्र कार्य रह गया है। इन कार्यों की पूर्ति के लिए ही बेचारों को पर्याप्त उठक–पटक करनी पड़ती है। फिर प्रचार के लिए समय कहाँ से आएँ।

दयानंद–स्वामी श्रद्धानन्द पूछ रहे थे कि मेरे गुरुकुल की क्या दशा है?

मैं–गोलियों की आवाज स्वामी श्रद्धानन्द जी तक भी जाती होगी। तीन–तीन सभाएँ इसकी स्वामिनी हैं। सभी इसे नोचना चाहती हैं। चांसलर तथा वाइस चांसलर बनने का लोभ इतना सर्वव्यापी है कि इसी के लिए सभाओं के मंत्री / प्रधान पदों को हथियाते हैं तथा बाद में गुरुकुल में दनदनाते हैं।

दयानंद–पण्डित वर्ग क्या कर रहा है?

मैं–यह वर्ग समाप्त हो गया है। अब तो अभाव में महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले अध्यापक ही इस धर्म को निबाह रहे हैं। उनमें से अधिकतर सिद्धान्तों के मर्मज्ञ नहीं, अपितु व्याख्यान कुशल हैं। इनके अतिरिक्त कुछ वक्ता ऐसे भी हैं कि जो कहते हैं कि वेद ही ईश्वर है। क्या आपका यही सिद्धांत था? ये लोग तथा इनके योगी गुरुजी नमस्ते का उत्तर भी नमस्ते से न देकर ओ३म् से देते हैं।

दयानंद–संन्यासी वर्ग क्या कर रहा है?

मैं–पहली बात तो यह कि आर्यसमाज में संन्यासी हैं ही गिनती के। ऐसा इसलिए कि आर्य लोग आश्रम मर्यादा का पालन नहीं करते। जो कुछ थोड़े–से हैं, उनमें से कुछ तो गुरुकुल या अन्य संस्थाओं के माध्यम से समाज की अच्छी सेवा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ का काम तो लाल कपड़े करके सभाओं तथा अन्य संस्थाओं पर कब्जे करना मात्र रह गया है। तीनों ही ऐषणाओं में आकण्ठ डूबे हैं। प्रचार करने वाले परिव्राट् तो कम ही दिखलायी देते हैं। आप ही अपना एक उत्तराधिकारी बना जाते तो अच्छा होता। कुछ

संन्यासी राजनीति में सक्रिय हैं तथा इतने उदार हैं कि मुसलमानों से भी विवाह आदि सम्बन्ध की बात कहते हैं तथा उन्हें उसी रूप में आर्यसमाज का सदस्य बनाने की वकालत करते हैं। शबाना आजमी के साथ भी कभी देखे जाते हैं। कभी पोप से मिलने जाते हैं।

दयानंद–अच्छा!

मैं–राजनीतिक दृष्टि से आर्यसमाज हाशिए पर पहुँच गया है। पहले तो कुछ प्रबुद्ध आर्य, विधान सभाओं तथा संसद के सदस्य तथा मंत्री बने भी अब तो सफाया–सा नजर आता है। राजनीति में पार्टी की पूछ होती है, चाहे वह छोटी ही हो। तभी तो सुसंगठित भारतीय जनता पार्टी को भी उ. प्र. में सरकार बनाने के लिए मायावती की खुशामद करनी पड़ी। आपने सर्वप्रथम स्वराज्य का उद्घोष किया, किन्तु कांग्रेस ने गाँधी जी को ही स्वतन्त्रता का दाता प्रचारित करके आपको पर्दे के पीछे धकेल दिया।

दयानंद–यह स्थिति कैसे बनी, जबकि स्वतन्त्रता संग्राम में ८० प्रतिशत आर्यसमाजियों ने ही योगदान दिया, ऐसा मैंने सुना है। मैं–ऐसा इसलिए हुआ कि आर्यसमाज ने आपके द्वारा प्रतिपादित राजार्य सभा को पूर्ण सम्मान नहीं दिया। आपने तो चक्रवर्ती राज्य की बात लिखी है, किन्तु आर्य तो भारत में भी अपना साम्राज्य स्थापित नहीं कर सके, क्योंकि इन्होंने कोई राजनीतिक पार्टी खड़ी नहीं की। मेरे विचार में तो यह अच्छा काम नहीं था। अकाली दल की भाँति आर्यसमाज को भी अपने नियन्त्रण में कोई राजनीतिक दल खड़ा करना चाहिए था, तभी तो वैदिक मान्यताएँ प्रचारित की जातीं। आप भारत में आएँ तो आपको स्पष्ट विदित हो जाएगा कि आज राजनीति पर किसका कब्जा है। इससे एक हानि यह भी हुई कि आर्यसमाज का राजनीतिक मंच न होने से राजनीति के जीवाणुओं से परिपोषित कुछ नेता आर्यसमाज में ही राजनीति करने लगे जिससे आर्यसमाज की छवि धूमिल होने लगी।

दयानंद–बेटा, यह तो तुम बहुत ही शोचनीय स्थिति बता रहे हो। मैंने तो ऐसी कल्पना भी नहीं की थी। तो क्या आर्यसमाज में लोकाराधन के कर्म कहीं भी नहीं हो रहे हैं?

मैं–नहीं, महाराज! सारे कुओं में भांग नहीं पड़ी है। अभी व्यक्तिगत तथा संस्थागत स्तर पर अनेक अच्छे कार्य हो रहे हैं। आर्यसमाज में अभी भी शास्त्रज्ञ पण्डित, अच्छे वक्ता, कुशल सेवक, उत्साही कार्यकर्ता, श्रद्धेय संन्यासी तथा आचारवान् लोग विद्यमान हैं। अभी भी अनेक गुरुकुल संस्कृत के प्रचार–प्रसार में संलग्न हैं। स्कूलों के द्वारा भी कुछ न कुछ प्रचार हो ही रहा है। धर्मार्थ अस्पताल चल रहे हैं। चाहे उत्तरकाशी का भूकम्प हो या गुजरात का, अभी भी आर्यजन वहाँ जाकर पर्याप्त कार्य करते हैं तथा कर रहे हैं। कुछ संस्थाएँ शोध कार्य भी करा रही हैं। इस प्रकार बिल्कुल निराशा की स्थिति तो नहीं हैं, हाँ अधिक अच्छी भी नहीं है। आर्यसमाज की ऊर्जा शनैः–शनैः समाप्त हो रही है। परस्पर झगड़े बढ़ रहे हैं। स्वाभाविक न्यूनताएँ आर्यसमाज में घर कर गयी हैं। आज आर्यसमाज के प्रमाद के कारण ही पाखण्ड पुनः पनप रहा है। आपसी फूट के कारण लोगों की श्रद्धा हममें कम हो रही है। पद लिप्सा के कारण आपसी झगड़े तथा मुकदमेबाजी होते हैं। युवा एवं कुमार वर्ग के आर्यसमाज से अछूता रहने के कारण नयी पौध आर्यसमाज में न आने से संख्या भी घट रही है। विधर्मियों के विरूद्ध कुछ भी न लिखा न बोला जाने के कारण वे ही लोग स्वयं तो बढ़ ही रहे हैं, आर्य सिद्धान्तों पर आक्षेप भी करते हैं। यदि आर्यसमाज समय की गति को समझ ले तथा वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करके भविष्य के लिए कोई ठोस योजना बनाए तो स्थिति सुधर भी सकती है, अन्यथा सुधार होना असम्भव है। आर्यसमाज में इस समय कुशल, त्यागी, तपस्वी, निस्वार्थ, दूरदृष्टि सम्पन्न नेतृत्व का अभाव है। स्वामी आनन्दबोध जी तो फिर भी सबको किसी न किसी प्रकार जोड़ते रहते थे। उनके बाद तो स्थिति बिगड़ ही गयी। इतना कहते ही स्वामी जी ने मेरे सिर पर हाथ रखते हुए कहा, अच्छा ४ बजने वाले हैं। मैं समाधि लगाने जा रहा हूँ। फिर कभी मिलेंगे। हाथ का स्पर्श पाते ही मेरी नींद खुल गयी तथा मैंने देखा कि मैं अपने ही कमरे में बिस्तर पर पड़ा हूँ। चार बजने वाले हैं।

मूर्ति पूजा पर ऋषि दयानन्द का अकेले काशी के 40 विद्वानों से एक साथ सफल शास्त्रार्थ

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में जो महान् कार्य किए, उनमें से एक काशी के दुर्गा कुण्ड स्थित आनन्दबाग में लगभग 50–60 हजार लोगों की उपस्थिति में मूर्ति पूजा वेद सम्मत नहीं है, विषय पर उनका शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें स्वामी जी विजयी हुए थे। यह शास्त्रार्थ आज से 153 वर्ष पूर्व 16 नवम्बर, 1869 को हुआ था। इस शास्त्रार्थ में दर्शकों में दो पादरी भी उपस्थित थे। जिले के अंग्रेज कलेक्टर शास्त्रार्थ का आयोजन रविवार को कराने के इच्छुक थे, जिससे वह भी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित रह सके। उनके आने से पण्डित कानून हाथ में लेकर अव्यवस्था व मनमानी नहीं कर सकते थे। अतः काशी नरेश श्री ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह ने इसे मंगलवार को आयोजित किया था। काशी के सनातनी पौराणिक पण्डितों को यद्यपि इस शास्त्रार्थ में मूर्ति पूजा को वेद सम्मत सिद्ध करना था परन्तु पौराणिकों की वेद में गति न होने और मूर्ति पूजा का वेदों में कहीं विधान न होने के कारण वह शास्त्रार्थ में वेदों व प्रमाणिक ग्रन्थों का कोई प्रमाण नहीं दे सके थे। वह विषय को बदलते हुए विषयान्तर की बातें करते रहे। यह शास्त्रार्थ सायं 4 से 7 बजे तक लगभग 3 घंटे हुआ था।

इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि स्वामी दयानन्द से पूर्व कभी किसी विद्वान ने मूर्ति पूजा के वेद सम्मत न होने पर शंका वा विश्वास किया हो। महाभारत काल के बाद वह पहले व्यक्ति ही थे जिन्होंने मूर्ति पूजा का खण्डन करने के साथ उसे वेद विरुद्ध घोषित किया था। स्वामी शंकराचार्य जी की पुस्तक विवेक चूड़ामणि में भी ईश्वर के सर्वव्यापक व निराकार स्वरूप का वर्णन किया गया है परन्तु उसमें मूर्ति पूजा के वेद सम्मत होने या न होने पर शंका नहीं की गई है और न किसी को शास्त्रार्थ की चुनौती ही दी गई है। ऋषि दयानन्द को परमात्मा से अति उच्चकोटि की परिमार्जित दिव्य बुद्धि व विवेक प्राप्त हुआ था। उन्होंने न केवल मूर्ति पूजा को अवैदिक घोषित कर उसका खण्डन किया अपितु देश की उन्नति में सर्वाधिक बाधक, देश के पराभव, पराधीनता एवं सभी बुराईयों का कारण मूर्ति पूजा को ही माना है। उनके अनुसार ईश्वर पूजा के स्थान पर मूर्ति पूजा ईश्वर प्राप्ति का साधन नहीं है अपितु यह एक ऐसी गहरी खाई है कि जिसमे ंमूर्ति पूजक गिरकर नष्ट हो जाता है।

यह ज्ञातव्य है कि कोई भी कार्य यदि विधिपूर्वक न किया जाये और साधक को ईष्ट देव का सच्चा स्वरूप व प्राप्ति की विधि ज्ञात न हो तो वह कभी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। यह आश्चर्य की बात है कि भारत में उपासना के लिए योग और सांख्य दर्शन जैसे ग्रन्थ होते हुए काशी के शीर्ष विद्वान भी मूर्ति पूजा का समर्थन करते थे और स्वयं भी ईश्वर के यथार्थ गुणों के आधार पर यम–नियम का पालन तथा धारणा एव ध्यान न करते हुए पाषाण व धातुओं की बनी हुई मूर्तियों को धूप व नैवेद्य देकर ईश्वर पूजा की इतिश्री समझते थे। यह उनकी घोर अविद्या थी। आज भी हमारे पौराणिक सनातनी भाई मूर्ति पूजा करते हैं। उनके विवेकहीन अनुयायी भी उनका अनुकरण व अनुसरण करते हुए विधिहीन तरीके से पूजा करके ईश्वर के पास जाने के स्थान पर उससे दूर हो जाते हैं, जिसकी हानि उन्हें इस जन्म व भावी जन्मों में उठानी पड़ती है। जो भी मनुष्य मूर्ति पूजा करेगा वह भी इससे होने वाली हानियों को उठायेगा। इसका उल्लेख ऋषि दयानन्द ने अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में मूर्ति पूजा में सोलह प्रकार के दोषों को सप्रमाण व तर्क के साथ किया है।

मूर्ति पूजा पर स्वामी दयानन्द जी के कुछ विचारों की चर्चा भी कर लेते हैं। उनके अनुसार मूर्ति पूजा का आरम्भ जैन मत से हुआ। सत्यार्थ प्रकाश में वह लिखते हैं कि जैनियों ने मूर्ति पूजा अपनी मूर्खता से चलाई। जैनियों की ओर से वह एक कल्पित प्रश्न प्रस्तुत करते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीव वा आत्मा का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है। इसका उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि आत्मा वा जीव चेतन और मूर्ति जड़ गुण वाली है। क्या मूर्ति की पूजा करने से जीवात्मा भी अपने ज्ञान आदि गुणों से क्षीण व शून्य होकर जड़ हो जायेगा? स्वामी जी कहते हैं कि मूर्ति पूजा केवल पाखण्ड मत है तथा मूर्ति पूजा जैनियों ने चलाई है। स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में चौदह समुल्लास लिखे हैं। बारहवां समुल्लास जैन मत की मान्यताओं की समीक्षा पर लिखा है। उस समुल्लास में भी स्वामी जी ने जैन मत की मूर्ति पूजा विषयक मान्यताओं का सप्रमाण खण्डन किया है।

मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए स्वामी जी अनेक प्रबल तर्क देते हैं। वह कहते हैं कि जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसी रचनायुक्त पृथ्वी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां, कि जिन पहाड़ आदि से वे मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं, उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो मूर्ति पूजक कहते हैं कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है, उनका यह कथन सर्वथा मिथ्या है, इसलिए कि जब वह मूर्ति उनके सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से वह मनुष्य एकान्त पाकर चोरी, जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकते हैं क्योंकि वह जानते हैं कि इस समय यहां उन्हें कोई नहीं देखता। इसलिये वह मूर्तिपूजक अनर्थ करे बिना नहीं चूकता इत्यादि। ऐसे अनेक दोष पाषाणादि मूर्ति पूजा करने से सिद्ध होते हैं।

यह भी बता दें कि काशी शास्त्रार्थ से पूर्व वहां के शीर्ष विद्वान पण्डितों ने अपने शिष्य व विद्वानों को स्वामी दयानन्द जी की विद्या की परीक्षा वा जानकारी लेने के लिए गुप्त रूप से उनके पास भेजा था। यह विद्वान थे राम शास्त्री, दामोदर शास्त्री, बाल शास्त्री और पं. राजाराम शास्त्री आदि। यह विद्वान स्वामी जी के पास उनका शास्त्रीय ज्ञान का स्तर जानने के लिए आये थे। काशी के पण्डित अपने पक्ष की निर्बलता को जानते थे इसलिए वह राजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के कहने पर भी शास्त्रार्थ के लिए उत्साहित नहीं हो रहे थे। इस कारण राजा ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप से स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ करने के निर्देश व आज्ञा दी थी। राजा जी ने मूर्ति पूजा से उन्हें प्राप्त होने वाली सुख–सुविधाओं व धन वैभव का हवाला भी दिया था। यह भी ज्ञातव्य है कि स्वामी जी के वेद प्रचार व मूर्ति पूजा के खण्डन से काशी के लोग बड़ी संख्या में प्रभावित हो रहे थे और मूर्ति पूजा करना छोड़ रहे थे।

इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी काशी नरेश व पण्डितों पर पड़ रहा था परन्तु मूर्ति पूजा के पक्ष में शास्त्रीय प्रमाण न होने के कारण वह किंकर्तव्य विमूढ़ बने हुए थे। काशी के प्रमुख पण्डित पं. बाल शास्त्री आदि ने अपने शिष्यों पं. शालिग्राम शास्त्री, पं. ढूंढिराज शास्त्री धर्माधिकारी, पं. दामोदर शास्त्री तथा पं. रामकृष्ण शास्त्री आदि को स्वामी जी के निकट भेजकर स्वामी जी द्वारा मान्य प्रमाणिक ग्रन्थों की सूची लाने के लिए भेजा था। बाद में काशी नरेश ने अनुरोध किया और पुलिस कोतवाल पं. रघुनाथ प्रसाद ने मध्यस्थता की तो स्वामी जी ने अपने द्वारा मान्य प्रमाणिक ग्रन्थों की सूची स्वहस्ताक्षर सहित उन्हें दे दी। उनके द्वारा उस समय जो 21 शास्त्र प्रमाण कोटि में स्वीकार किये गये थे, वे थे चार वेद संहिताएं, चार उपवेद, वेदों के 6 अंग, 6 उपांग तथा प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़कर मनुस्मृति।

शास्त्रार्थ के दिन स्वामी दयानन्द जी के एक भक्त

पं. बलदेव प्रसाद शुक्ल ने स्वामी जी से कहा कि महाराज, यह काशी नगरी गुण्डों का घर है। यदि यह शास्त्रार्थ फर्रुखाबाद में होता तो वहां आपके दस–बीस भक्त और अनुयायी सामने आते परन्तु यहां काशी में तो आपको शत्रुओं के शिविर में जाकर रणकौशल दिखाना होगा। दृढ़ व अपूर्व ईश्वर विश्वासी स्वामी दयानन्द का पं. बलदेव जी को उत्तर था–बलदेव! डर क्या है? एक ईश्वर है, एक मैं हूँ, एक धर्म है, और कौन है ?

सत्य का सूर्य प्रबल अज्ञान और अविद्या के अंधकार पर अकेला ही विजयी होता है। अपने अटल ईश्वर विश्वास के बल पर ही दयानन्द जी ने जड़ उपासना के प्रतीक दृढ़ दुर्ग काशी को अकेले ही भेदने का निश्चय किया था। शास्त्रार्थ के दिन स्वामी जी ने क्षौरकर्म कराया था, उसके बाद स्नान किया, शरीर पर मृत्तिका धारण की, इसके बाद पद्मासन लगाकर देर तक परमेश्वर का ध्यान किया। इसके बाद उन्होंने भोजन किया। भोजन के बाद वह शास्त्रार्थ स्थल आनन्दबाग में शास्त्रार्थ आरम्भ होने के समय 4 बजे से पूर्व पहुंच गये थे। यह लेख पर्याप्त विस्तृत हो गया है।

हम इस लेख में स्वामी दयानन्द जी के विपक्षी विद्वानों से हुए प्रश्नोत्तर भी देना चाहते थे परन्तु विस्तार भय से नहीं दे पा रहे हैं। इतना ही महत्वपूर्ण है कि काशी के पण्डितों ने वेदों से मूर्ति पूजा का कोई प्रमाण न देकर विषयान्तर करने का प्रयत्न किया। स्वामी जी के सभी प्रश्नों, धर्म व अधर्म मनुस्मृति के अनुरूप लक्षण वा उत्तर भी वह न बता पाये । शास्त्रार्थ चल ही रहा था कि पं. विशुद्धानन्द शास्त्री जी ने अपनी विजय घोषित कर दी और शास्त्रार्थ स्थल से अपने अनुयायियों की भीड़ के साथ ढोल–बाजे बजाते हुए चले गये। पराजय में भी उत्सव मनाना हमारे पौराणिक विद्वानों को आता है।

सर्व श्री दीप चन्द विजय कुमार,

कीरतपुर, जिला बिजनौर (उ.प्र.), मो. 9837444469

दीप कोल्ड स्टोर,

कीरतपुर, जिला बिजनौर (उ.प्र.), मो. 9457438575

दीप मार्बल्स,

कीरतपुर, जिला बिजनौर (उ.प्र.), मो. 9412468691

वैदिक साधन आश्रम तपोवन

नालापानी देहरादून दूरभाष-0135-2787001

आत्म कल्याण का स्वर्णिम अवसर

यजुर्वेद, सामवेद पारायण एवं गायत्री यज्ञ का विशेष आयोजन

तदनुसारेण दिनांक-10 मार्च 2023 (शुक्रवार) से 19 मार्च 2023 (रविवार) तक

यज्ञ के ब्रह्मा	-	**डॉ० वेदपाल जी**
यज्ञ के संचालक	-	**स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी महाराज**
वेद पाठ	-	**श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योर्तिमठ गुरूकुल पौंधा के ब्रह्मचारियों द्वारा**

मान्यवर महोदय,

सादर् नमस्ते!

आप सबको यह जानकर हर्ष होगा कि पूर्व वर्षों की परम्परा का निर्वहन करते हुए **वैदिक साधन आश्रम तपोभूमि** (पहाड़ी पर) **यजुर्वेद, सामवेद पारायण एवं गायत्री यज्ञ** का आयोजन करने का निश्चय किया गया है। आपसे प्रार्थना है कि कार्यक्रम में सपरिवार भाग लेकर धर्म लाभ उठायें तथा ज्ञानार्जन, यश एवं पुण्य के भागी बनें।

कार्यक्रम सारणी

योग साधना	:	**प्रातः 4:30 बजे से 6:30 बजे तक**
यज्ञ	:	**प्रातः 7 बजे से 9 बजे तक**
प्रातःराश	:	**प्रातः 9 बजे से 9:30 बजे तक**
प्रवचन	:	**प्रातः 9:30 बजे से 11:30 बजे तक**
यज्ञ एवं प्रवचन	:	**सायं 3 बजे से 6 बजे तक**

आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था तपोवन आश्रम द्वारा की जायेगी।

श्रद्धापूर्वक दिया गया दान ही स्वीकार किया जायेगा।

निवेदक

विजय कुमार आर्य	प्रेमप्रकाश शर्मा	अशोक कुमार वर्मा
अध्यक्ष	**सचिव**	**कोषाध्यक्ष**
09837444469	09412051586	09412058879

BASANTA MAL SAT PRAKASH

Manufactures of : All Kinds Shawls & Lohies

M : 094171-36756, 70877-54848

GHASS MANDI, LUDHIANA

हमारे पास बेबी सॉफ्ट शॉल, पूजा शॉल, स्टॉल शॉल, मिक्सचर लोई, जैकेट शॉल, कढ़ाई शॉल, कैशमीलोन प्लेन क्लॉथ, चैक शर्टिंग क्लॉथ में हर प्रकार की वैरायटी बनती है और रेट भी कम हैं। कृपया एक बार जरूर सम्पर्क करें।

ARYA TEXTILE

Manufactures of :
All Kinds Handloom Bed Sheets & Furnishing Fabrics

M : 98963-19774, 95412-88174, 98964-01919

Specialist in : BABY BLANKETS & READYMADE CURTAINS

हम Readymade Curtains, Jachets, Guddad, Loi, Mat, Baby Soft Shawls, Baby Blankets, Acrylic Blankete, Rajai Khol (Dohar), Rajai, comforter, AC Set, Velvet Joda & 3D Bed Sheets, Dhari etc. आदि के निर्माता हैं। इसके अलावा मिंक व पोलर कम्बल (Mink & Polar) आदि भी बेचते हैं और रेट भी कम हैं। कृपया एक बार जरूर सम्पर्क करें।

Factory :
Opp. RK School,
Kutani Road, Panipat-132103

PREMIUM QUALITY

Shop :
665/4, Pachranga Bazar,
Panipat-132103

Baby Blankets / Mink Blankets / Quilts / Comforters / Jackets / Duvet Covers / Shawls / Fleece Blankets

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉकर्स

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

हमारे उत्पाद

- स्ट्रट्स / गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फ्रन्ट फोर्क्स
- गैस स्प्रिंगस / विन्डो बैलेन्सर्स

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बस बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर / फोर व्हीलर उद्योगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लॉट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है ।

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं. 9–11, मारुति इंडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव–122015, हरियाणा
दूरभाष :
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2021-2023 समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।
संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com